कहानीकुण्ड

किशोरी लाल

कहानीकुण्ड

किशोरी लाल

शुभी पब्लिकेशन्स
गुड़गांव

किशोरीलाल
Q-1/23, ग्रांउड फ्लोर
डी.एल.एफ सिटी, फ़ेज -II
गुड़गावं - 122002
दूरभाष : (95124) 2562325
0124-4101972

प्रकाशक
शुभी पब्लिकेशन्स
15 ए.के.डी टावर्स, सैक्टर -14
गुड़गांव - 122001 (हरियाणा)
दूरभाष : (95124) 2223529/5081199

ISBN:
Rs. 95/-
US $ 8.00

प्रथम संस्कृण : 2004

Printed in India at
Efficient Offset Printers
New Delhi- 110035, India

करता हूँ समर्पित इसे पत्नी के नाम
जिसके सहयोग से पूर्ण हुआ काम

अनुक्रम

पगली

नाम तो उसका पारबती था परन्तु घर वाले उसे पगली कहते थे। वह मूर्ख नहीं थी। एक साधारण लड़की थी जिसे संसार के आचार व्यवहार का ज्ञान नाम मात्र का था। जो जैसे कहे वैसा ही करती थी। कोई टोकटाकी नहीं, कोई प्रतिरोध नहीं। माँ कहे झाड़ू लगा दे, चुपके से झाड़ू लगा देगी। पिता कहे दुकान पर मेरा हाथ बटा दे तो झट तैयार हो जाएगी। भाई कहे मेरा सिर दबा दे, बिना किसी हिचकिचाहट के सिर दबा देगी। जो कुछ खाने को दो, खा लेगी। जो कपड़ा पहनने को दो, पहन लेगी। जब कभी उसकी माँ उसकी तुलना उसके भाई बहिनों से करती तो उसे कहती, "तू तो पगली है। सारा जीवन पगली ही रहेगी। अपना कुछ ध्यान नहीं। बस दूसरों के काम में लगी रहती है।" पाठशाला तो वह जाती थी परन्तु पढ़ने लिखने में कोई विशेष रूचि नहीं थी। पाठशाला से जो काम घर पर करने के लिए मिलता झट से समाप्त करके पुस्तकों को घर के एक कोने में रख कर खेलने के लिए बाहर भाग जाती थी। काम ठीक से हुआ या नहीं उसे इसकी कोई चिंता नहीं थी। कभी माँ की नज़र बचाकर, कभी कोई बहाना बनाकर खेलने के लिए चली जाती थी। क्योंकि घर वालों को उससे कोई अपवाद नहीं था और ना ही वह उन्हें तंग करती थी वह दिन में दो बार खेलने जाए या चार बार, घंटे बाद घर आए या दो घंटे बाद वे उसे कुछ नहीं कहते थे। हाँ, कभी कभी माँ उसको डाँटती अवश्य थी, मगर वह उसे मारती नहीं थी।

पगली अन्य लड़कियों के साथ नहीं खेलती थी। उसकी कोई सहेली नहीं थी। कोई उसे घर से बुलाने नहीं आता था। तीन वर्ष की आयु से वह सुख देव के साथ खेलने लगी थी। अब वह तेराह की हो गई थी मगर खेलती उसी के साथ थी। वह भी उसे पगली कह कर पुकारता था और पगली उसे सुखू कहकर बुलाती थी। यदि किसी दिन एक को आने में देर हो जाती तो दूसरा उसके घर के पीछे जा कर तोते जैसी आवाज़ निकाल कर बुलाता था। क्योंकि वहाँ पक्षी बहुत थे किसी को पता नहीं चलता था कि तोता बोल रहा है या सुखू या फिर पगली। कैसा भी मौसम क्यों ना हो कोई दिन ऐसा नहीं होगा वे ना मिलते हों । वर्षा में किसी पुराने मकान की छत या खपरैल के नीचे बैठ जाते। गरमी में नदी के तट पर या कुँए की मुंढेर पर बैठ कर बातें करते। कभी हँसते तो कभी एक दूसरे से झगड़ भी पड़ते । यदि एक रूठ कर घर चला जाता तो दूसरा उसे मनाने के लिए उसके घर के पीछे जाकर तोते की आवाज़ निकालता । कोई ना कोई तमाशा करते रहते। तितलियों को पकड़ना, भंवरे के समान गुंजार करना या पक्षियों की आवाजें निकालना, मिट्टी या रेत के घरोंदे बनाना, पंतग उड़ाना, गाय या भैंस के बछड़े की दुम पकड़ कर उसे भगाना, वर्षा में मेंढक के समान टरटर करना - मनोरंजन का कोई ना कोई रास्ता वह निकाल लेते थे। खेतों से गाजर मूली निकाल कर खाना, पेड़ों से मौसम अनुसार आम, जामन, बेर इत्यादि तोड़ कर खाना, बारी बारी से एक ही गन्ने का चूसना, टापना, नाचना, दौड़ना - ये सब उन के लिए खेल थे। बातें भी बहुत करते थे। कभी थकते नहीं थे। कभी पगली घर से चुरा कर खाने के लिए ले आती तो कभी सुखू गरमी में पेड़ के नीचे बैठे कभी पगली अपना सिर सुखू की गोद में रखकर सो जाती तो कभी वह पगली की गोद में सिर रख कर सो

जाता । जब वे दोनो एक साथ होते ऐसा प्रतीत होता था उन्हें संसार के कार्यों से कुछ लेना देना नहीं था।

दोनो एक ही गाँव के रहने वाले थे। पारबती का पिता रामदास पंसारी की दुकान चलाता था और सुख देव का पिता रामजीलाल कपड़े का काम करता था। दोनो एक ही जात के थे। इसलिए यदि पगली और सुखदेव एक साथ खेलते थे तो किसी को कोई आपत्ति नहीं थी। गाँव का हर व्यक्ति जानता था कि दोनो में गहरी दोस्ती है और कुछ लोग तो यह भी कहते थे कि बड़े होकर शायद एक दूसरे से विवाह कर लें। और तो और उनके माता पिता जब उनको एक साथ देखते वे भी यही सोचते कि जब वे बड़े हो जाएँगे उनको एक सूत में बांध देंगे। एक दिन तो पगली की माँ ने अपने पति से कहा,'' हम लड़की वाले हैं। हमें ही पहिल करनी चाहिए। रामजीलाल के घर जाकर सुखदेव का हाथ माँगना चाहिए।'' रामदास ने उत्तर दिया ,'' अभी पगली छोटी है। एक दो वर्ष और प्रतीक्षा करनी चाहिए।'' पगली की माँ ने फिर कहा, '' पगली तेराह साल की हो गई है। लोग तो पाँच वर्ष की आयु वाली लड़की का विवाह कर देते हैं। '' रामदास ने बात को काटते हुए कहा, ''अच्छा, अच्छा । किसी दिन उचित समय देख कर रामजीलाल से बात करूँगा।''

एक दोपहर पगली और सुखू जामन के पेड़ के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे थे। पगली की नज़र पक्के हुए जामनों पर पड़ी। उन्हें देखकर उसके मुँह में पानी भर आया। जिस टहनी से जामन लटक रहे थे वहाँ तक सुखू का हाथ नहीं पहुंच सकता था। उसने कई बार उछल कर टहनी पकड़ने का प्रयास किया मगर वह असफल रहा। उसने पगली को कहा, '' मैं पेड़ पर चढ़कर जामन तोड़ लाता हूँ।'' पगली ने उसे यह कह कर रोका, '' ना बाबा ना,

ऊपर मत चढ़ना। जामन की लकड़ी बहुत दुर्बल होती है। कहीं तुम गिर गए और चोट लग गई मैं तो मर जाऊँगी। तुम पहले भी इसी चक्कर में एक बार गिर चुके हो। वह तो भगवान की कृपा थी तुम्हें कोई चोट नहीं लगी।" सुखू कहने लगा, " ठीक है मगर जामन खाने को मेरा भी मन कर रहा है। ऐसा करते हैं तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ, फिर मैं खड़ा हो जाऊँगा। तुम जामन तोड़ लेना।" पगली को यह प्रक्रिया अच्छी लगी, फिर भी उसने कहा, " ज़रा सावधानी से मुझे पकड़ना, कहीं गिर गई तो तुम्हें पीटूँगी जैसे पाठशाला में अध्यापक छात्र को पीटता है।" पगली उसके कंधे पर सवार हो गई और अभी उसने मुट्ठी भर जामन ही तोड़े थे कि उसका संतुलन बिगड़ गया और दोनो गिर पड़े। चोट तो नहीं लगी किसी को परन्तु पगली की चोली के ऊपर का भाग कुछ फट गया। दोनो शीघ्र खड़े हो गए और अपने कपड़े झाड़ने लगे। सुखू ने पूछा, " तुम्हें कोई चोट तो नहीं लगी? " पगली ने कहा, " नहीं तो।"

"तुम झूठ बोल रही हो।" सुखू ने पगली की नंगी छाती पर जो चोली फट जाने से नज़र आ रही थी अपना हाथ रखते हुए कहा, " तुम कहती हो चोट नहीं लगी। देखो तो, इतनी शीघ्रता से सूजन भी आ गई है और जामन का चिंह भी दिखाई दे रहा है।"

पगली ने ज़ोर ज़ोर से हँसते हुए कहा, " तू तो बुद्धू है।" सुखू ने पहले कभी किसी स्त्री की नंगी छाती नहीं देखी थी। उसे कुछ समझ में नहीं आया, " तू मेरी हँसी उड़ा रही है। साथ में मुझे बुद्धू कहती है। यदि तुमने मुझे फिर बुद्धू कहा तो तुम्हें मारूँगा।"

"अच्छा बाबा, कान पकड़ती हूँ, फिर नहीं कहूँगी"

" पर एक बात बता तूने मुझे बुद्धू क्यों कहा?"

पगली फिर हँस पडी, " अपने आप समझ जाएगा एक दिन।"

एक शाम सुखू घर के बाहर खाट पर पीठ के बल लेटा हुआ कुछ सोच रहा था । थोड़ी देर पहले वर्षा की छींटे पड़ने से वायुमंडल ठंडा हो गया था। धीमी गति से चलने वाली हवा में एक नई प्रकार की विचित्र सुगंध थी जिस का वह सोए सोए आनंद ले रहा था। एकाएक उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसके शिश्न में एक अद्भूत उत्तेजना सी हुई जिसका उसे पहले कोई अनुभव नहीं था। उसका शिश्न गुबारे की तरह फूल गया था। उसे यह बड़ा विचित्र लगा और फिर अकस्मात उसका ध्यान पगली की छाती पर गया जो वैसे सूजी हुई लगती थी जैसे कि उसका शिश्न । अगले दिन जब सुखू पगली से मिला तो उससे पूछने लगा, " तुम्हारी सूजन ठीक हो गई क्या? ज़रा देखूँ तो।" पगली ने हँसकर कहा, " अब तुम शरारती हो गए हो।"

" इस में शरारत की क्या बात है। मैं तो वैसे ही पूछ रहा था।"

"वैसे पूछना होता तो अगले दिन पूछते। तीन मास के उपरांत पूछ रहे हो।"

' हाँ, वह तो ठीक है। फिर भी देखूँ तो सही।"

" दिखा तो दूँगी मगर एक प्रतिबंध है।"

"वह क्या? " सुखू ने आश्चर्य से पूछा।

"हाथ मत लगाना कहीं सूजन फिर ना हो जाए।"

पगली ने अपनी चोली के बटन खोल कर उसे अपने दाँए ओर की छाती दिखाई मगर लज्जा से अपनी आँखे बंद कर के कहने लगी, "जब देख लो तो बता देना।"

सुखू को पगली की छाती देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और हर्ष भी, कहने लगा, "यह तो बहुत सुन्दर है। स्वच्छ,साफ़ और संकर्षण।"

"तू अब कविता करने लगा है।" पगली ने उसे छोड़ते हुए कहा।

" क्या करूँ, तुम्हारे प्रेम ने कवि बना दिया है मुझे।"

"अच्छा जी, तुम्हें प्रेम कब से होने लगा।"

"तुम्हें नहीं है क्या?"

" यह कोई पूछने की बात है क्या?"

अगले दिन सुखू ने उसे गुदगुदी करते हुए कहा, "कल तुम ने एक ओर से ही चोली खोली थी, ज़रा दूसरी ओर भी तो देखूँ।"

"अब तुम्हारी शरारतें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। दूसरी में क्या है, वैसी ही है।"

"तुम तो इन्हें प्रतिदिन देखती हो। तुम जानती हो कैसी हैं। मैंने तो नहीं देखा। मुझे नहीं दिखाओगी तो किसे दिखाओगी?"

"अब तुम बातें बनाना भी सीख गए हो। चलो देख लो मगर ....
."

"हाँ बाबा हाँ , हाथ नहीं लगाऊँगा।"

"तुम बड़े उतावले हो ।मैं तो कुछ और कहने जा रही थी।"

"क्या ? मैं भी सुनूँ।"

"अब नहीं बताऊँगी, फिर कभी।"

इस में कोई संदेह नहीं कि बचपन का प्यार अब युवा प्रेम में परिवर्तित हो गया था। अब वे तितलियों को नहीं पकड़ते थे ना ही गाय भैंस के बछड़े के पीछे भागते थे। अब वे चाँद सितारों, फूल पत्तियों , नदी की लहरों, सुन्दर पक्षियों के गान, आकाश में उमड़ते काले बादलों की गरज , भँवरे की भूँ भूँ और जुगनू की चमक , वर्षा के पश्चात मोर का नृत्य और इन्दरधनुष के रंगों की बातें करते थे।

दोनो के माता पिता को चिंता हुई। वे बड़े हो गए थे। इस प्रकार उनका प्रतिदिन एकाँत में मिलना उचित नहीं था। वे उनके विवाह की बात चला रहे थे कि एक दुर्घटना हुई जिसने सबको

हिला कर रख दिया। दिसम्बर का महीना लग चुका था। सरदी की तीव्रता धीरे धीरे बढ़ रही थी। एक शाम कोई पाँच बजे के लगभग जब सूर्य अस्त होने में अभी एक घंटा शेष था वे दोनो अपने अपने घर से मिलने के लिए निकले। गाँव से कोई एक मील दूर एक पुरानी टूटी हुई सराय थी जहाँ उन्होंने मिलने का समय पहले ही निश्चित कर लिया था। पगली घरवालों की आँख बचाकर निकली और जब वह आधे रास्ते में थी किसी पागल कुत्ते ने पीछे से आकर उसकी ऐड़ी के ऊपर टाँग से पकड़ लिया। वह घबरा गई और अपने आप को कुत्ते की पकड़ से छुड़ाने का बहुत प्रयास किया मगर कुत्ते ने नहीं छोड़ा। डर के मारे उसने भागने का प्रयत्न किया कि शायद भागने से कुत्ता उसे छोड़ दे मगर ऐसा नहीं हुआ इसी घबराहट में उसका पाँव फिसल गया और वह कुत्ते के साथ धड़म से एक गड्ढ़े में जा गिरी। गड्ढ़ा काफ़ी गहरा था, यदि वह खड़ी भी हो जाती तो उसे कोई देख नहीं सकता था। वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगी मगर उस समय आसपास कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो उसकी आवाज़ सुनकर उसकी सहायता के लिए आता। इतने में अंधेरा हो गया। जब वह नियुक्त स्थान पर नहीं पहुँची तो सुखू को चिंता हुई । वह सीधा उसके घर गया और पगली का पूछा। वह घर पर नहीं थी। अब सुखू के साथ पगली के घरवालों को भी गम्भीर चिंता हुई कि पगली कहाँ चली गई।

क्योंकि रात अंधेरी थी गाँव वाले लालटेन लेकर पगली को ढूँढने के लिए निकले। ढूँढने में आधी रात हो गई और जब वे निराश होकर घर लौटने की सोच रहे थे तो एक व्यक्ति की नज़र गड्ढ़े पर पड़ी। उसने जब लालटेन की रोशनी से अंदर देखा तो पगली मिल गई मगर वह चेतना में नहीं थी। उन्होंने मिल कर उसे बाहर निकाला और जब उन्होंने उसकी टाँग पर कुत्ते के काटने

का निशान देखा तो वे समझ गए कि क्या हुआ था। लालटेन की रोशनी से उन्होंने फिर झाँक कर गड्ढ़े में देखा तो कुत्ता मरा पड़ा था । वे पगली को तुरंत वैद्य के पास ले गए । उसने पगली को देखते ही कहा, " इसकी अवस्था चिंताजनक है। समय अधिक होने से कुत्ते का विष इसके सारे शरीर में फैल गया है। मैं दवा दे देता हूँ मगर मैं अभी कुछ नहीं कह सकता यह बच जाएगी कि नहीं। इसे आप अलग से रखना और ध्यान रहे कि इसकी थूक किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं पड़नी चाहिए। अगर इस के मुँह से लार टपकने लगे तो मुझे सूचित कर देना ।स्थिति जटिल है।" वे उसे उठा कर घर ले गए।पिछली रात को उसने थोड़ी देर के लिए आँखे खोलीं फिर बंद कर लीं। प्रातःकाल उसके मुँह से लार टपकने लगी तो सब घरवालों के होश उड़ गए। तुरंत वैद्य को बुलाया गया। उसने उसकी दशा देखकर कहा, " इसे अलग कमरे में रखना पड़ेगा।हो सकता है जब यह चेतना में आए यह एक पागल व्यक्ति के समान व्यवहार करने लगे।यह भी संभव है किसी को काट ले और अगर ऐसा हुआ तो उस व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। आप को बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ेगा।"

परीवारवालों ने उसे एक कमरे में बंद कर दिया।जब वह चेतना में आई वही हुआ जिसका वैद्य को भय था।वह एक पागल के समान चिल्लाने लगी और कमरे में इधर उधर भागने लगी। कभी वह अपने बाल नोचती, कभी बड़बड़ाती तो कभी ज़ोर ज़ोर से चीखें मारती।परन्तु जब उसने सुखू को देखा तो वह उसी समय शाँत हो गई ।यह निश्चित था वे उसे खुला नहीं छोड़ सकते थे।कुछ दिन तो उसकी माँ , भाई बहिन और कुछ अन्य व्यक्ति उसे प्रतिदिन देखने आते मगर समय बीतने के साथ वे उसे लगभग भूल गए। उसके पिता ने उसके रहने के लिए मकान की छत पर एक कमरा

बनवा दिया। वही उसे खिड़की से खाना देता और जब वह सोई हुई होती थी उसके कमरे की सफ़ाई करता। उसके पिता के अतिरिक्त दिन में कम से कम एक बार सुखू उसे मिलने आता। वह खिड़की के पास जाकर खड़ा हो जाता और सांकेतिक भाषा में उसकी कुशलता पूछता क्योंकि पगली अब स्पष्ट शब्दों में नहीं बोल सकती थी। पगली सुखू को देखकर फुले नहीं समाती थी और खिड़की के निकट आते ही अपनी चोली उतार देती । कभी कभी दोनो की आँखों में आँसू भर आते।

ऐसे दो वर्ष बीत गए। सुखदेव के माता पिता ने उसे शादी करने के लिए कई बार कहा मगर वह नहीं माना। वह सदा यही उत्तर देता, " जब पगली ठीक हो जाएगी मैं उसी से विवाह करूँगा। मैंने मन ही मन में उसे अपनी पत्नी स्वीकार कर लिया है। मैं उससे विश्वासघात नहीं कर सकता ।" वैद्य ने उसे समझाया, " पगली के ठीक होने की कोई संभावना नहीं है। जिस स्थिति में वह है उसमें किसी प्रकार के सुधार की अपेक्षा करना मूर्खता होगी।" जब सगे संबंधियों और मित्रों ने उस पर दबाव डाला तो वह अंत में विवाह करने के लिए मान गया। बिना कोई समय गंवाए उसके माता पिता ने उसका विवाह कुलवति नाम की एक लड़की से कर दिया। मगर सुखू ने पगली के पास जाना नहीं छोड़ा। कुछ हो जाए, कितना काम क्यों नहा हो, घर में अतिथि आए हों, वह पगली को देखने अवश्य जाता । कुछ समय तक तो कुलवति को समझ नहीं आई कि उसका पति हर रोज़ समय निकाल कर कहाँ जाता था। उसने दो तीन बार पूछने का प्रयास किया मगर सुखू ने उसे टाल दिया। कोई ठीक उत्तर ना मिलने से कुलवति की चिंता और बढ़ गई। उसने अपनी सास और देवर से भी पूछा मगर उसे कोई उचित उत्तर नहीं मिला।

एक दिन कुलवति अड़ गई, " देखो , तुम मुझ से कुछ छिपा रहे हो मगर आज मैं पूछ कर ही रहूँगी । यदि तुम नहीं बताओगे तो मैं तुम्हारा पीछा करूँगी चाहे ऐसा करना मर्यादा का उल्लंघन होगा।" जब सुखू ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया तो वह कहने लगी, " मुझे ऐसा प्रतीत होता है तुम किसी लड़की से प्रेम करते हो और यदि मेरा अनुमान सत्य है तो मैं तुम्हें वचन देती हूँ मैं कुछ नहीं कहूँगी। तुम्हारा इस प्रकार चुप रहना इस बात का संकेत देता है कि तुम अवश्य किसी से प्रम करते हो जो तुम मुझे नहीं बताना चाहते।"

सुखू थोड़ी देर तो चुप रहा फिर कहने लगा, " तुम सुन नहीं सकोगी मगर मैं तुम्हें अधिक समय तक अंधेरे में नहीं रखना चाहता। तो सुनो।" फिर उसने कुलवति को सारी कहानी बचपन से लेकर उस समय तक सुनाई । कहानी सुनकर कुलवति को आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। सुखू ने कहा, " एक वही समय ऐसा है जब वह मुझे देखकर शांत हो जाती है । नहीं तो सारा दिन चीख़ती चिल्लाती रहती है और शायद तड़पती रहती है कि वह उस कारागार से कब मुक्त होगी। हमने बहुत चेष्टा की वह ठीक हो जाए। शहर से डाक्टर को बुलाया मगर हम असफल रहे। यदि उसके भाग्य में यही लिखा है तो कोई क्या कर सकता है।" भविष्य में कुलवति ने सुखदेव को पगली से ना मिलने के लिए कभी नहीं टोक़ा। एक दिन उसके मन में विचार आया कि पगली को देखना चाहिए। जब उसने अपनी इच्छा सुखदेव को प्रकट की पहले तो वह नहीं माना मगर कुलवति के आग्रह पर वह इस प्रतिबंध पर मान गया कि कुलवति पगली को दूर से सीढ़ियों के दरवाज़े के पीछे जो छत पर खुलता था छिप कर देखेगी। उसे भय था कहीं कुलवति को देख कर पगली सामने ना आए।

फिर एक दिन सुखदेव कुलवति को पगली के घर ले गया। जैसा सुखू ने उसे निर्देश दिया था वह सीढ़ियों के दरवाज़े के पीछे खड़ी हो गई और सुखू आगे चला गया। उसे दूर से देखते ही पगली झट से खिड़की के पास आ गई। कुलवति दरवाज़े के पीछे खड़ी हो तो गई परन्तु वह पगली को देखने के लिए इतनी उत्तेजित थी कि वह दरवाज़े की ओट से थोड़ा बाहर निकल आई। खिड़की के निकट आकर जब पगली अपनी चोली उतारने लगी तो उसकी दृष्टि कुलवति पर पड़ी। उसका हाथ उसी समय रूक गया और वह तुरंत पीछे हट कर कमरे के कोने में दीवार की ओर मुँह करके बैठ गई। सुखू को शंका हुई कि पगली ने कुलवति को देख लिया था। उसने जब मुड़ कर देखा तो कुलवति उसके पीछे थोड़ी दूरी पर खड़ी थी। उसने पगली को आवाज़ लगाई। वह नहीं आई। उसने फिर आवाज़ लगाई, " पगली, क्या हो गया तुम्हें। देखो, मैं आया हूँ – तुम्हारा सुखू।" वह नहीं आई। उसने हथेली से खिड़की के पल्ले को बजाया, वह नहीं आई। यदि दरवाज़े को बाहर से ताला ना लगा होता, शायद वह दरवाज़ा खोलकर अंदर चला जाता। उसने पगली को लगातार कई आवाज़ें लगाई, वह नहीं आई। वह आधे घंटे तक वहीं खड़ा रहा। अंत में निराश होकर कुलवति को साथ ले घर चला गया।

रात को आठ बजे जब पगली को भूख लगती थी वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाती थी। उस रात जब उसके चिल्लाने की आवाज़ नहीं सुनाई दी उसके पिता को चिंता हुई। थाली में खाना डाल कर वह तुरंत ऊपर गया और खिड़की से खाना अंदर देने के लिए उसे आवाज़ लगाई मगर वह खाना लेने के लिए नहीं आई। उसने कई बार आवाज़ लगाई और खिड़की को ज़ोर ज़ोर से हिलाया मगर वह नहीं आई। क्योंकि कमरे में रोशनी नहीं थी वह

पगली को ठीक तरह से नहीं देख सकता था यद्यपि उसे लगा कि वह एक कोने में बैठी हुई थी। उसने आवाज़ लगाकर नीचे से लालटेन मंगवाया ।ताला खोलकर जब वह अंदर गया उसने देखा पगली कोने में चुपचाप बैठी थी। शायद बैठे बैठे उसे नींद आ गई थी। पिता ने पगली को हाथ से झंझोड़ा वह अपने स्थान से नहीं हिली। रामदास को क्या पता था कि पगली कमरे से निकल कर कबकी स्वतंत्र हो चुकी थी।

* * * * * * * *

दूध का नशा

हिसार का वार्षिक पशु मेला उत्तरी भारत में बहुत प्रसिद्ध माना जाता था। दिसम्बर मास में यहाँ दूध देने वाले पशु विशेषकर गाय , भैंसों का क्रय विक्रय होता था। जितना अधिक दूध जो पशु देता और जितना तरूण होता संभव है उसका दाम उतना ही अधिक होता और उसकी माँग भी अधिक होती। काफ़ी सौदाबाज़ी होती थी। भैंसों का रंग तो प्रायाः काला होता था मगर गाय कई रंगों की होती थीं - काली,भूरी, सफेद, पीली या आधी एक रंग की आधी दूसरे रंग की। कभी कभी रंग के अनुसार उनका नाम रखा जाता था। उदाहरण के लिए सफेद को गोरी या पीली को बंसती कहा जाता था। जो गाय दोनो समय - सवेरे और शाम को मिला कर पंद्रह बीस लिटर और भैंस बीस पच्चीस लिटर दूध दे वह सर्वोत्तम समझी जाती थी। उनकी मांग बहुत होती थी। यह बात और है कि हर ख़रीदार के पास कितना धन था। जो इतना पैसा नहीं ख़र्च कर सकता था वह कम मूल्य वाले पशु को ख़रीद कर संतुष्ट होता।

एक वर्ष देवीचरण नाम का एक ग्वाला अपने भाई कालीचरण के साथ मथुरा से एक भैंस ख़रीदने के लिए आया। यह उसका पहला अवसर था। उसने सुन रखा था कि हिसार के पशु मेले में पशु के चुनाव का इससे और कोई अच्छा साधन नहीं था। इसके अतिरिक्त पशुओं की संख्या अधिक होने से उचित दाम पर अपनी पसंद का माल मिल सकता था। दोनो भाईयों ने मिलकर अच्छी तरह से जाँच पड़ताल की। कोई दस बारह भैंसें देखीं और अंत में एक भैंस जो दोनो समय मिलाकर बाइस लिटर

दूध देती थी खरीद ली। विक्रेता तो उसके चार हजार रूपये माँगता था परन्तु दलाल के द्वारा तीन हजार चार सौ में सौदा तै हुआ। दोनो समय उन्होंने अपने सामने दूध निकलवा कर देखा। जब दूध ठीक मात्रा में निकला तो उनकी तसल्ली हो गई।

अगले दिन प्रातः काल वे दोनो भैंस और उसके बछड़े को साथ लेकर पैदल चल पड़े। रास्ते में तीन चार स्थानों पर खाने पीने के लिए रूक कर और रात को विश्राम करके अगले दिन शम के छे बजे मथुरा पहुँच गए। रास्ते में बातचीत करते हुए सोचने लगे कि भैंस का क्या नाम रखा जाए। क्योंकि वे मथुरा के रहने वाले थे उन्होंने अंत में यह तै किया कि भैंस का नाम गोपी रखा जाये यद्यपि ऐसा नाम आम तौर पर गाय को दिया जाता था। वे बड़े प्रसन्न थे कि अब दूध बेचने का धंधा बढ़ जाएगा। यदि दूध बच गया तो उसकी दही बना कर बेचेगें। देवीचरण की पत्नी ने जब स्वस्थ्य गोपी को देखा तो वह भी बहुत प्रसन्न हुई। झट अंदर से थाली में कुछ चावल और जलता हुआ दिया रख कर ले आई। पहिले भैंस की आरती उतारी फिर उसके माथे पर चंदन का टीका लगाया। उसे खूब खिलाया पिलाया। अगले दिन जब सवेरे उसने बारह लिटर दूध दिया तो वे सब संतुष्ट थे। भैंस कसौटी पर पूरी उतरी थी। देवीचरण और उसकी पत्नी मिश्री ने पुराने ग्राहकों के अतिरिक्त आसपास के रहनेवालों को सूचना दी कि वे अब उनसे जितना दूध चाहें खरीद सकते हैं।

देवीचरण और मिश्री दो कमरे के मकान में रहते थे। घर के आगे काफ़ी जगह ख़ाली थी जहाँ वे पशुओं को बाँधते थे। भैंस खरीदने से पूर्व उनके पास तीन गाय थीं। सर्दियों में घासफूस का झोंपड़ बना कर उनको अंदर रखते थे। देवीचरण का भाई कालीचरण भी ग्वाला था। मगर वह अपना काम स्वंय करता था।

भाई की सहायता के लिए वह उसके साथ हिसार चला गया था। देवीचरण का कोई बच्चा नहीं था यद्यपि उनको विवाह किए बीस वर्ष हो गए थे। वे गाय भैंस तथा उनके बछड़ों को अपने बच्चे समझते थे और उनसे अधिक प्यार करते थे।

दूसरे दिन प्रातः काल जब देवीचरण पाँच बजे के लगभग उठा , **मुँह** हाथ धोकर उसने बाल्टी उठाई और भैंस के बछड़े को छोड़ दिया । भैंस के थन को मुँह में डालते ही भैंस का दूध नीचे उतर आता था। परन्तु उस दिन जब भैंस ने अपने बछड़े को लात मार कर दूर करने लगी तो देवीचरण को आश्चर्य हुआ। उसने जब भैंस के निकट जा कर थनों को देखा तो उसे पता लगा कि थनों में दूध नहीं था। वे खाली थे और सुकड़ गए थे जैसे कि दूध दोहने के पश्चात होते हैं। उसने तुरंत अपने भाई को बुलाया। दोनों ने थनों को अच्छी तरह देखने के पश्चात यह अनुमान लगाया कि कोई व्यक्ति सवेरे सवेरे चोरी से भैंस का दूध निकाल कर ले गया या फिर भैंस बिमार थी। वे उसे पशुओं के डॉक्टर के पास ले गए। उसने भैंस की जाँच करने के बाद बताया कि भैंस स्वस्थ थी। देवीचरण उसे घर वापिस ले आया मगर जब अगली प्रभात को भी भैंस ने दूध नहीं दिया उसे गंभीर चिंता हुई । उसे यह विश्वास हो गया कि अवश्य उसके उठने से पूर्व कोई चोर आकर भैंस का दूध निकाल जाता है।

तीसरी प्रातः काल वह चार बजे उठकर जबकि अभी अंधेरा था सायवान के एक कोने में जाकर चुपके से बैठ गया । अपने ऊपर काला कंबल डाल दिया ताकि चोर को पता ना लगे। छप्पर के साथ कोई पुराना पीपल का पेड़ था। काफ़ी घना और चौड़ा था। यदि कोई उसके पत्तों में छिप कर बैठ जाए तो पता नहीं चल सकता था । थोड़े समय के पश्चात उस पेड़ के पत्तों के हिलने

की आवाज़ आई । क्योंकि उस समय हवा नहीं चल रही थी उसने सोचा चोर पत्तों में छिप कर बैठा था और अब नीचे उतर रहा था। वह सावधान हो गया । जब पत्तों की सरसराहट बढ़ गई उसने हाथ में पकड़े लठ को और चुस्ती से पकड़ लिया ताकि चोर के अंदर प्रवेश करते ही वह उसके सिर पर पूरी शक्ति से लठ का वार कर सके।

परन्तु उसके तो होश ही उड़ गए जब उसने एक काले नाग को पेड़ से उतर कर सायवान की ओर आते देखा। उसमें इतना साहस नहीं रहा कि वह भाग कर अपनी जान बचा सके। उसे विश्वास हो गया कि वह दिन उसके जीवन का अंतिम दिन था। नाग को देखकर तीनों गाय, भैंस तथा उनके बछड़े थर थर काँपने लगे। वे इतने भयभीत थे कि उनके मुख से आवाज तक भी नहीं निकली। ऐसा लगा जैसे उनकी साँस रूक गई हो। इन सब पशुओं में से भैंस जो सबसे शक्तिशाली थी सबसे अधिक काँप रही थी। नाग ने छप्पर के अंदर प्रवेश करते ही भैंस की ओर देखा और फिर अपनी लम्बी दुम से भैंस की पिछली टाँगों को ऐसे जकड़ लिया जैसे ग्वाला दुध निकालते समय रस्सी से बाँध देता है ताकि भैंस अपनी टाँगों को ना हिलाए अर्थात दूध निकालने में कोई बाधा ना आए। भैंस ऐसे चुपचाप खड़ी रही जैसे किसी भवन का स्तंभ हो। फिर नाग बारी बारी सब थनों का दूध पी गया। जब उसने देखा अब और दूध नहीं निकल रहा था वह उसी मार्ग से वापिस चला गया जिससे वह आया था। पेड़ पर चढ़ कर वह पत्तों के अंदर छिप गया और क्योंकि दूध बहुत पी लिया था उसे तुरंत नींद आ गई जैसे कोई शराबी शराब के नशे में असवाधानी से सो जाए। नाग के जाते ही देवीचरण की जान में जान आई । उसने

ऐसा प्रकोप और ऐसा भयंकर दृष्य अपने जीवन में पहिले कभी नहीं देखा था।

उसने यह घटना पहिले मिश्री को फिर कालीचरण को सुनाई मगर उसने अन्य व्यक्तियों को नहीं बताई। उसे डर था कहीं वे उससे दूध लेना बंद ना कर दें। एक बात स्पष्ट थी कि इतने बड़े नाग को जो छे फुट लम्बा था ठिकाने लगाना जान जोखम में डालना था। एक बार तो दोनो भाईयों के मन में आया कि जब नाग दूध पी कर सो जाए उसका हथोड़े से सिर कुचल दिया जाए। फिर उन्हें डर लगा कि कहीं नाग जाग गया तो वह उन दोनो को डस लेगा जिससे उनकी मृत्यु निश्चित थी। अब गोपी को रखना भी आपत्तिपूर्ण था और उससे उन्हें कोई लाभ भी नहीं था। उन्होंने सोचा क्यों ना इसे बेच दिया जाए परन्तु मिश्री ने इस प्रस्ताव का विरोध किया जिसके दो कारण थे। वह कहने लगी, " यदि हमें इस घटना के कारण जो हानी हुई है इसका अर्थ यह नहीं कि हम जानबूझ कर अपनी हानी दूसरे के गले मढ़ दें। ऐसा करना केवल दोष ही नहीं, पाप भी है। " दूसरी बात यह थी वह कृष्ण की पूजा करती थी। उसको यह अनुभव हुआ कहीं यह नाग शेषनाग तो नहीं। अपने पति से कहने लगी, " तुम तो धन्य हो । शेषनाग के दर्शन कर लिए। मुझे भी उनके दर्शन हो जाते तो मैं भी तर जाती" । विषय और भी गंभीर हो गया।

देवी चरण के पास और कोई उपाय नहीं था कि वह गोपी को जंगल में छोड़ आए। एक दिन उसने मिश्री को कहा, " मुझे किसी ने बताया है कि नथूपूर गॉव में कोई महात्मा रहते हैं जो शिव के पुजारी हैं । उनके पास ऐसी जड़ी बूटी है जिसके खाने से भैंस के दूध में ऐसी गंध आएगी कि नाग उससे दूर भागेगा । मैं गोपी को उनके पास ले जा रहा हूँ। सूर्यअस्त होने से पूर्व लौट आऊँगा।"

उसने सोचा यदि मैंने गोपी को जंगल में छोड़ने की बात बताई तो वह इस का विरोध करेगी और गोपी को नहीं ले जाने देगी। मिश्री ने कहा, " ठीक है, मगर संध्या तक लौट आना नहीं तो मुझे चिंता लगी रहेगी" देवीचरण गोपी को ले गया मगर बछड़े को रख लिया। गोपी ने जब देखा कि बछड़ा साथ नहीं जा रहा था वह अपने स्थान से नहीं हिली। मगर देवी ने उसे कुछ पुचकार कर कुछ प्यार से अपने साथ ले ही गया।

क्योंकि गोपी बछड़े को पीछे छोड़ने के लिए अनिच्छुक थी उसकी चलने की गति बहुत धीमी थी। देवीचरण का अनुमान था वह दोपहर तक जंगल पहँच जाएगा। मगर अब उसको लगा शाम हो जाएगी। वह थक गया था। उसने विश्राम करने की इच्छा से गोपी को एक बड़े पेड़ के साथ बाँध दिया और स्वयं पेड़ की छाया में बैठ गया। उसकी आँख लग गई। जब उसकी आँख खुली शाम होने वाली थी। वह सोचने लगा क्यों ना गोपी को वहीं छोड़ दूँ। अभी वह सोच ही रहा था कि उसने उसी काले नाग को अपनी ओर आते हुए देखा। वह घबरा कर भागा और दूर जाकर खड़ा हो गया। जाने से पहले वह गोपी की रस्सी लगभग खोल चुका था। जब गोपी ने नाग को अपनी ओर आते हुए देखा उसने एक झटके से रस्सी तोड़ दी मगर आश्चर्यजनक बात यह थी उसने भागने का कोई प्रयास नहीं किया। बल्कि रणभूमि में लड़ने वाले एक योद्धा के समान वह नाग का सामना करने के लिए तैयार हो गई। जब नाग गोपी के निकट आया उसने अपनी लम्बी दुम से गोपी की पिछली टाँगों को जकड़ने का प्रयास किया तो गोपी ने बड़ी फुर्ती से अपनी दिशा बदली और अपनी पूरी शक्ति लगाकर सींगों से उठाया और उसे ऊँचा ले जाकर धड़म से धरती पर पटक दिया। नाग को ऐसी आशा नहीं थी। वह परस्पर युद्ध करने को तैयार नहीं

था। फिर भी गिरते ही वह खड़ा हो गया और फुक्कारते हुए उसने गोपी पर वार किया। गोपी पिछे हटने वाली नहीं थी। दोनों काफ़ी समय तक पहलवानों की तरह एक दूसरे पर वार करते रहे। कभी नाग का पलड़ा भारी होता तो कभी गोपी का । दोनो को काफी चोटें लग चुकी थीं मगर कोई भी हार मानने के लिए तैयार नहीं था। हार मानता भी कैसे– अपने हाथ से ही अपनी जान लेने वाली बात थी।

गोपी को एक अवसर ऐसा मिला उसने अपने नोकिले लम्बे सींगों से नाग के सिर पर ऐसा वार किया कि वह आहत हो गया। ऐसा लगता था कि अब गया समझो। उस में उठने की अब और शक्ति नहीं थी। गोपी भी थक कर चूर हो चुकी थी। अब उसमे भी इतना बल नहीं था कि और वार कर सके। वह रूक गई। नाग ने अवसर देखते ही उसे डस लिया। गोपी को डसते ही नाग ने अपने प्राण त्याग दिये। उधर नाग का विष गोपी के शरीर में इतनी तीव्र गति से फैल गया कि उसने भी वहीं दम तोड़ दिया। देवीचरण यह युद्ध दूर से देख रहा था। जब वह युद्ध समाप्त हो गया वह निकट आया। उसने देखा दोनो मरे पड़े थे।

देवीचरण की समझ में यह बात तो आ गई कि गोपी ने कैसे डट कर नाग का आमना सामना किया। सायबान में बंधी हुई थी और लड़ाई करने का स्थान बहुत तंग था। यह भी हो सकता है क्योंकि नाग ने सारा दूध पी कर उसके बछड़े को बूखा रखा उसके मन में प्रतिशोध की आग जल रही थी। मगर देवीचरण की समझ में यह बात नहीं आई कि नाग दिन के समय कैसे पेड़ से उतरा और लोगों की नजर बचा कर जंगल में पहुँच गया।

* * * * * * * *

अकर्त्तन हीरा

मुजरा समाप्त होने में अभी कुछ समय शेष था कि मलिक ठाकुर दास उठ खड़ा हुआ और जाने लगा । कोठे की नायिका अमीर बाई ने जब उसे जाते हुए देखा तो वह भी झट से उठ कर आ गई और हवेली में खड़ी हो गई । ठाकुर के निकट आने पर पूछने लगी " हजूर, रूकावट के लिए क्षमा चाहती हूँ । आज आप इतनी जल्दी क्यों जा रहे हैं। क्या हजूर को मुजरा पसंद नहीं आया?"

मुजरे के अंत में मलिक अमीर बाई को सदा बहुमूल्य उपहार देता था। उसे एकाएक उठ कर जाते हुए देखा तो अमीर बाई को अंचभा हुआ।

"हजूर, आप कभी-कभी तो आते हैं। विश्वास कीजिए आप के आने से महफ़िल को चार चाँद लग जाते हैं। नृत्य के बीच में से आप का यूँ उठ कर जाने से मुझे दुःख हुआ। हमारे से कोई असावधानी हो गई हो तो उसके लिए क्षमा माँगती हूँ"

"अमीर बाई, यह बात नहीं हैं । आज मुझे कुछ जल्दी है" । मलिक का उत्तर सुनकर अमीर बाई की जान मे जान आई फिर कहने लगी " हजूर, मुजरे के बाद मैं आप को एक विशेष भेंट देने वाली थी।"

मलिक मुस्कराया, " अभी इसे अपने पास रखो। अगली बार ले लूँगा।"

"हजूर एक बार देख तो लीजिए। आप को पसंद ना आये तो आप का जूता मेरा सर"

"वह तो ठीक है, मगर आज नहीं।" मलिक ने उत्तर दिया।

"जैसे आप की इच्छा मगर एकबार फिर कहे देती हूँ हीरों में हीरा है।"

मलिक फिर मुस्कराया। जेब से एक हजार रूपये निकालकर उसे दिये जो उसने झुक कर स्वीकार किये। फिर कहा "हजूर, आप की इनायत है।" फिर एकबार झुक कर सलाम कियाऔर धीरे से पूछने लगी," हजूर, आप फिर कब आयेंगे?"
"आज मंगलवार है । शुक्रवार को आऊँगा।" यह कहकर वह चला गया। जाते जाते अमीर बाई ने फिर कहा, "हजूर, आपकी धरोहर मेरे पास सुरक्षित रहेगी।" वह उसे ललचा रही थी।
जिस जगह अमीर बाई का कोठा था वह क्षेत्र लाल बाजार के नाम से जाना जाता था। वहाँ नाच गाना होता था और वेश्या का धंधा भी साथ साथ चलता था। वेश्यागान के लिए अमीर बाई का कोठा सब से प्रसिद्धऔर महँगा माना जाता था। वहाँ नगर के धनवान तथा ऊँची पदवी वाले ही जा सकते थे। अमीर बाई के यहाँ हर नाचने गाने वाली अपनी कला में निपुण तो थी साथ साथ सुन्दर और तरूणी भी थी। यदि कोई अच्छा ग्राहक मिल जाये तो नाच गाने के साथ साथ शारीरिक संबंध भी जुड़ जाता था। क्योंकि बाई का कारोबार कई वर्षो से चलता था वह प्रायः नगर के हर व्यक्ति , छोटा या बड़ा, धनवान या निर्धन, को जानती थी। उसके कई कर्मचारी थे जो उसे हर प्रकार की सूचना समय समय पर देते रहते थे । काफी चतुर, दूरदर्शी और आभ्यासिक थी। क्योंकि उसकी पहुँच कई ऊँची पदवी वाले सरकारी कर्मचारियों तक थी उसके कोठे पर दंगा फ़साद तथा तू तू मैं मैं, जो दूसरे कोठों पर अकसर होते थे, बहुत ही कम होते थे। आय की कोई कमी नहीं थी। कोठे को साफ़ सुथरा रखने के अतिरिक्त उसे पूर्ण रूप से सजा भी रखा था।

मलिक ठाकुर दास शुक्रवार के स्थान पर एक रात पहले ही अमीर बाई के कोठे पर पहुँच गया। वह उसे देख कर विस्मित हो गई । जो उपहार उसे देना था वह तैयार नहीं था। परन्तु वह मलिक को अगले दिन आने के लिए भी नहीं कह सकती थी।
''अमीर बाई कल मुझे किसी आवश्यक काम से बाहर जाना है। मैंने सोचा आज ही अपना उपहार ले लूँ कहीं तुम यह न समझो मैंने अपना वचन पूरा नहीं किया।''

''हजूर, आप का आना सिर आँखों पर मगर आप का उपहार अभी तैयार नहीं है। ऐसे पकड़ा देना शोभा नहीं देता। आप थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए मैं उपहार तैयार करवा देती हूँ। इतनी देर में आप जलपान कीजिए।'' अमीर बाई ने सुशीलता से कहा।
''अमीर बाई तुम ने तो कहा था वह हीरों में हीरा है। हीरा शुद्ध हो तो उसे पालिश की आवश्यकता नहीं होती।''
''आप की बात सोला आने सच है मगर ....''
मलिक ने टोकते हुए कहा, '' जब हम उसे जिस अवस्था में भी है लेने के लिए तैयार हैं, तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है''
''तो ठीक है हजूर, जैसे आप की इच्छा । आईए, मेरे साथ आईए''

अमीर बाई ने धीरे से एक कमरे का दरवाजा खोला । एक लड़की पलंग पर बैठी हुई थी। उन को देखते ही वह अपने स्थान से खड़ी हो गई। उस पर एक दृष्टि डालते ही मलिक के मुख से विचित्र शब्द निकले,'' तू यहाँ क्या कर रही है?'' अमीर बाई कुछ समझ नहीं पाई, कहने लगी ''हजूर , आप इसे जानते हैं।''
मलिक ने विचार मग्नता से उत्तर दिया'' शायद यह लड़की इतनी सुन्दर है इसका कोठे पर बैठना इसके सौन्दर्य का अपमान है''
फिर लड़की की ओर देखते हुए पूछा, '' क्या नाम है तुम्हारा?''

''चाँदनी'', लड़की ने धीरे से उत्तर दिया
''इन्हें सलाम करो , बेटी।'' अमीर बाई ने चाँदनी को कहा।
चाँदनी ने झुक कर आदर सहित सलाम किया।
मलिक ने अपने कोट की जेब से सौ रूपये के नोटों की एक गढ़ी निकाली और जब वह गढ़ी चाँदनी को देने लगा तो वह कुछ झिझकी।
अमीर बाई ने कहा,''बेटी ले लो, बड़े आदमियों को ना नहीं करते।'' मलिक ने फिर अमीर बाई को कहा, ''तुम से अकेले में कुछ बात करनी है।''
अमीर बाई मलिक को दूसरे कमरे में ले गई। मलिक ने तुरंत कहा, ''चाँदनी को मुझे दे दो। बताओ, तुम्हें क्या चाहिए-पचास हजार, एक लाख, दो लाख........ तुम जो माँगो, मिलेगा।''
अमीर बाई ने उत्तर दिया, ''हजूर, बहुत पैसा खर्च किया है इस पर। आप जो उचित समझें दे दीजिए।''
''चीज़ तुम्हारी है, तुम ही बताओ।''
पाँच लाख पर सौदा तै हुआ। मगर अमीर बाई को समझ नहीं आया कि मलिक चाँदनी को कहाँ ले जाएगा। उसने अपना कर्तव्य समझते हुए कहा, ''आप ने इसके बारे मे कुछ पूछा नहीं। कहाँ से आई। किस जात की है .... ''
अमीर बाई को टोकते हुए मलिक ने कहा, ''हीरा सदा खान से निकलता है । अनाड़ी के हाथ लग जाये तो पत्थर है। परखने वाले के हाथ लग जाये तो बहुमूल्य है''
मलिक अमीर बाई को यह कह कर चला गया,'' पाँच लाख रूपये कल भिजवा दूँगा और चाँदनी को एक सप्ताह के अन्दर बुलवा लूँगा। तब तक वह तुम्हारे पास हमारा न्यास रहा।''

मलिक ठाकुर दास बजाज शहर का बहुत बड़ा रईस था। शहर के बीस मुहल्लों में से पाँच तो उसके थे जिससे उसे किराया आता था। शहर के बाहर सैंकड़ों एकड़ जमीन थी जिसका अधिक भाग काशतकारों को दे रखा था। धन बहुत था। खाने पीने वाला व्यक्ति था। सारे शहर में अपनी धाक जमा रखी थी। बीस वर्ष की आयु में विवाह हो गया था परन्तु पत्नी पाँच वर्ष के पश्चात चल बसी। कोई बच्चा नहीं था। दूसरा विवाह किया । उससे एक लड़का हुआ जो अब दस वर्ष का था। संतोश रानी पत्नी का नाम था और लड़के का नाम अशोक कुमार था। स्कूल में पढ़ता था। संतोश रानी का संबंध भी किसी धनवान परिवार से था।

ऊँचे कुटुम्ब से आने वाले और धनवान पुरूषों के लिए मुजरे में जाना कोई बुरी बात नहीं समझी जाती थी। इसके विपरीत अगर कोई ना जाए तो उसे असभ्य समझा जाता था। मलिक को मुजरा में अधिक रूचि नहीं थी। मगर वह कभी कभी जाता अवश्य था विशेषकर जब यारों दोस्तों के साथ पी रखी हो। साल में दो चार बार कोठे पर आधी रात तक भी रह जाता था । अमीर बाई उसके मनोरंजन के लिए उसकी इच्छा अनुसार उचित प्रबंध कर देती थी। रईसों की पत्नीयाँ अच्छी तरह जानती थीं कि उनके पति कोठे पर मुजरा में जाते हैं मगर वे कुछ कहती नहीं थीं क्योंकि किसी रईस का वहाँ जाना समाज में कलंकित नहीं गिना जाता था।

अपने वचन अनुसार मलिक ने पाँच लाख रूपये अगले दिन अमीर बाई को भिजवा दिये। चाँदनी के लिए शहर के दूसरे कोने में एक बहुत बड़े भवन का पहला तल अलग करवा दिया । नये फ़रनीचर, परदे, कालीन, फ़ानोस, इत्यादी से उसे सजवाया। दो दासियाँ , दो दास और एक चौकीदार को स्थाई रूप से

नियुक्त किया । जब बिशंबर नाथ , जो मलिक का मैनेजर था, चाँदनी को वहाँ रहने के लिए ले आया पहले तो चाँदनी को विश्वास नहीं आया मगर रात को जब मलिक उस से मिलने आया तो साथ मे सोने का हार भी ले आया। जब उसने वह हार चाँदनी के गले में डाला तब वह समझ गई कि वह मलिक की रखेल थी और वह उस पर मोहित था। वह कहाँ से आई थी, किस माँ ने उसे जन्म दिया था और कैसे वह अमीर बाई के कोठे पर पहुँची इस विषय पर मलिक ने कभी भी चाँदनी से कुछ नहीं पूछा और ना ही उसे कभी बताया। मगर एक बात स्पष्ट थी चाँदनी बहुत प्रसन्न थी। जब संतोश रानी को मालूम हुआ कि उसकी एक सौतन आ गई थी उसे बहुत दुःख हुआ। इससे अधिक दुःख इस बात का था कि उसका पति उसे कोठे से उठा कर ले आया था। कई दिन वह मलिक से नहीं बोली। मलिक ने उसे स्पष्ट शब्दों में यह कहा, " मैं उसे देख कर पागल हो गया था। वह इतनी सुन्दर है कि यदि तुम भी उसे देख लो तो दंग रह जाओगी। मुझे क्षमा करना मैं विवश हो गया था और अब भी विवश हूँ । मैं उसे नहीं छोड़ सकता।" धीरे धीरे संतोश ने अपने आप से समझोता कर लिया। कुछ समय गुज़रने पर एक दिन उसके मन मे विचार आया कि चाँदनी को देखना चाहिए। क्या वास्तव में वह इतनी सुन्दर थी जितना उसका पति उसकी प्रशंसा कर रहा था। पहले तो उसे बड़ा विलक्षण हुआ कि वह अपने पति से कैसे कहे । फिर साहस कर के अपनी इच्छा उस पर प्रकट की। मलिक उसी समय संतोश को साथ ले गया। जब संतोश ने चाँदनी को देखा तो वह स्तंभित हो गई । उसके मुँह से अपने आप यह शब्द निकले "हे राम" घर आ कर उसने मलिक को कहा, "कुछ भी हो, आपकी पसंद की सरहाना करती हूँ। उसके सौंदर्य के सम्मुख मैं तो तुच्छ लगती हूँ।"

यह बात अब सारे शहर में फैल चुकी थी कि मलिक ठाकुर दास की एक रखेल थी जो कभी मुजरा करती थी। मगर लोग यह भी जानते थे कि वह अति सुन्दर थी। यों कहिए सौदंर्य की ज्योतसना थी। समय के साथ धीरे धीरे लोग सब कुछ भूल गए और उसकी चर्चा अब बहुत कम होने लगी। ऐसे कई वर्ष बीत गए । अशोक कुमार अब बड़ा हो गया था। माता पिता ने उसके विवाह की बात पक्की कर दी और जिस दिन विवाह की रीतियां होनी थीं वह दिन और समय भी निश्चित हो गये। उससे कुछ दिन पूर्व चाँदनी ने मलिक से कहा , " आप के पुत्र का विवाह होने वाला है। वह मेरा भी पुत्र है । मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है । मैं सोच रही थी इस शुभ अवसर पर मैं अपने बेटे को क्या उपहार दूँ।"

"तुम जो चाहो वही दे सकती हो। एक बार कह कर तो देखो।" मलिक ने विश्वास दिलाते हुए कहा।

"वह तो मै जानती हूँ मगर मै अपनी ओर से कुछ देना चाहती हूँ।"

"चाँदनी , अब पहेलियाँ मत बुझवाओ । स्पष्टता से कहो। मुझ से क्या परदा," मलिक ने गंभीरता से कहा ।

"मै चाहती हूँ मैं उसके विवाह वाले दिन खूब नाचूँ।"

मलिक यह सुनकर चौंक उठा, " यह तुम क्या कह रही हो। तुम सबके सामने नाचोगी। यह नहीं हो सकता।"

चाँदनी ने कहा, " आप ने मुझे इतना प्रेम दिया , सुविधाएँ दीं, धन दिया । मुझे कभी कुछ मांगना नहीं पड़ा। आज आप से पहली बार माँग रही हूँ आप ने इंकार कर दिया। ऐसा मत कीजिए, मेरे सरताज।"

मलिक विवश हो गया । कहने लगा, "मगर मुझे संतोश से पूछना पड़ेगा । अगर उसने नहीं कर दी मैं हाँ नहीं कर सकता। तुम मेरी कठिनाईयों को समझती हो।"

जब मलिक ने यह बात संतोश से की तो वह भड़क उठी, " यह नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। अगर आपने उसे नाचने की अनुमति दी तो मैं विष खा लूँगी।"
मलिक ने संतोश के बड़े भाई से बात की । उसकी प्रिय सहेली मनोरमा से बात की । बात फैल गई। रिश्तेदारों और भाईयों के कहने पर संतोश मान गई मगर इस प्रतिबंध पर कि नाचने के तुरंत पश्चात वह वहाँ से चली जायेगी।

शादीवाली रात जब अशोक के सिर पर मुकुट रखा गया, फूलों के हार पहनाए गये और अंत में घोड़ी पर बिठाया गया तो बारातियों की भीड़ से निकलकर चाँदनी रंगबिरंगे कपड़े पहने और आभूषणों से सुसज्जित जब वह नाचने के लिए आई देखने वालों कीआंखें खुली की खुली रह गई । और जब उसने अपने नृत्य की कला को प्रस्तुत किया तो लोग देखते ही रह गये। कोई अपने स्थान से हिला तक नहीं। वह नाचती रही तब तक जब तक वह थक कर चूर नहीं हो गई। संतोश ने उसे अपने हाथों से थामा और सोने के दो कड़े अपने पुत्र के सिर से घुमा कर चाँदनी को उपहार में देने लगी तो चाँदनी ने उसे नम्रता से कहा," मैं आपका ही तो खाती हूँ ।इस की क्या आवश्यकता थी।" संतोश की आँखों में आँसू आ गये और वह कहने लगी, " बहिन, मुझे क्षमा करना। मैंने तुझे ठीक तरह से परखा नहीं। तु महान है । जितना आन्नद तूने मेरे पति को दिया है शायद मैं उसका आधा भी नहीं दे सकी।"
चाँदनी बारात के साथ दूसरी माँ के रूप में गई।
अशोक की शादी हो जाने पर एक दिन संतोश ने मलिक को कहा," आप चाँदनी को यहाँ ले आइए। वह वहां अकेली पड़ी रहती है। हमारे साथ रहेगी तो उसका मन भी लगा रहेगा।"

जब मलिक ने अपनी पत्नी का प्रस्ताव चाँदनी के सामने रखा तो उसने कहा, " वह आपकी धर्मपत्नी है । मेरा उस घर में क्या स्थान है। चाहे आप मुझे उतना प्यार देते है जितना आप उसे देते हैं मगर मैं इस योग्य नहीं कि उसके साथ रहूँ। मैं स्वयं नहीं जानती मैं कौन हूँ, मेरा कुल क्या है, मेरा धर्म क्या है। मुझे वहां रहने का कोई अधिकार नहीं है।"

जब मलिक ने सारी बात संतोश को सुनाई उसकी आंखों में फिर एक बार आँसू आ गए । उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मगर दो दिन पश्चात वह अकेली चाँदनी के घर गई और उसे मना कर अपने साथ ले आई।

* * * * * * * * * * *

पाकिस्तानी जासूस

द्विजातियों के सोलह संस्कारों में बालक या बालिका का मुंडन संस्कार आवश्यक तथा महत्वपूर्ण समझा जाता है। कहते हैं जो बाल जन्म के साथ सिर पर होते हैं वह अपवित्र माने जाते हैं। उनको उतरवाने से जो बाल आगे जाकर निकलते हैं वह ना केवल घने और सुन्दर होते हैं साथ साथ सारा जीवन ना सिर में कभी खुजली होती है ना ही कोई मर्म रोग। इस शुभअवसर पर परिवार के सदस्य, सगे संबधियों, मित्रों इत्यादी के अतिरिक्त पंडित जी भी सम्मिलित होते हैं। वास्तव में पंडित जी का होना अनिवार्य है। हाँ , नाई को तो कोई भूल नहीं सकता। वह ना हो पंडित जी का होना व्यर्थ समझो। नाई हिन्दु हो या मुसलमान इस से कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि जो बाल सिर से उतारे जाते हैं वह वैसे भी अपवित्र होते हैं और फिर पंडित जी श्लोक पढ़ कर और हवन करके गंजे बालक या बालिका को शुद्ध कर देते हैं। रीति अनुसार अपने दूसरे बालक सोम का मुंडन संस्कार ब्रिगेडियर राधाकृष्ण राय ने अपने घर पर करवाने के लिए तिथि और समय पंडित बद्रीनाथ से परामर्श करके निश्चित कर दिये। दिन रविवार, तिथि पंद्रह अप्रैल और समय दिन के दस बजे। मुंडन क्रिया के पश्चात दोहपर के भोजन का प्रबंध किया गया। ब्रिगेडियर राय गोहाटी का रहने वाला था। वह चाहता था कि मुंडन संस्कार उसके नगर में हो परन्तु कारगिल की घटना के पश्चात भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ जाने की संभावना को ध्यान में रखते हुए सेना विभाग ने उसकी छुट्टी स्वीकृत नहीं की। उसने

गोहाटी से अपने माता पिता और छोटे भाई कुलश्रेष्ठ को दिल्ली बुलवा लिया। राय अपने परिवार के साथ दिल्ली छावनी में रहता था।

पंडित बद्रीनाथ छावनी क्षेत्र के गोपीनाथ बाज़ार के मंदिर में रहता था। वह पिछले तीन चार बर्ष से वहाँ रह रहा था। परन्तु किसी को उसके बारे में अधिक जानकारी नहीं थी। वह कब आया और कहाँ से आया यह कोई नहीं जानता था। वास्तव में लोग भिखारी को भिक्षा और पंडित को दान देते समय उसका अता पता नहीं पूछते। मगर इस में कोई संदेह नहीं के छावनी क्षेत्र में रहने वाले पंडितज़ी को अच्छी तरह से जानते थे। वह पंडित होने के अतिरिक्त विद्वान भी था। जब कभी कहीं पूजा या हवन करना हो वह पुस्तक का प्रयोग कम करता था क्योंकि उसको वेदों तथा पुरानों से लिए संस्कृत के अनेक श्लोक मौखिक रूप से याद थे। उसकी ध्वनी इतनी सुरीली थी कि श्रोतागण झूमने लग जाते थे चाहे निनान्वे प्रतिशत लोगों को उन श्लोकों का अर्थ समझ नहीं आता था। परन्तु कभी कभी पंडितजी समय और स्थान को देखते हुए जनता के हित के लिए उन श्लोकों को सरल हिन्दी में अनुवाद कर देता था। देखने में स्वस्थ्य, कद लम्बा, चेहरा गोल और माथे पर केसर चंदन का तिलक तो ऐसा चमकीला और सुन्दर लगता था जैसे कोई देवता पंडित के वस्त्र पहनकर स्वयं धरती पर गोपीनाथ बाज़ार में रहने के लिए आ गया हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वह सारी छावनी में प्रसिद्ध और लोकप्रिय था। जनता उसका बहुत सम्मान करती थी।

ब्रिगेडियर राधाकृष्ण ने कोई साढ़े नौ बजे अपने ड्राईवर दिवाकर को कहा कि जाओ पंडितजी को गाड़ी में ले आओ। गोपीनाथ बाज़ार उसके घर से अधिक दूर नहीं था। दस बजने में

पाँच मिंट शेष रहते थे कि दिवाकर पंडितजी को लेकर आ गया। ठीक दस बजे मुंडन का कार्यक्रम आंरभ हो गया। पंडितजी और राय दोनो समय के प्रतिबंध थे। बाराह बजे के लगभग सब कार्य समाप्त हो गया। ब्रिगेडियर ने पंडित को दान में पाँच सौ रूपये नकद और एक जोड़ा कपड़ों का दिया जिसे पंडितजी ने नम्रतापूर्वक स्वीकार किया। जब वह उठ कर जाने लगा तो सभी ने कहा, " पंड़ित जी भोजन तैयार है। खा कर जाईए।" पंडित ने टालते हुए कहा, " मुझे कहीं और जाना है। मैं अधिक समय तक यहाँ नहीं ठैर सकता। " राय ने कहा, "जैसे आपकी इच्छा। मैं आपका भोजन पैक करवा देता हूँ। बस पाँच मिंट लगेंगें।" उसने अपने भाई को पंडित के लिए खाना बाँध कर लाने के लिए कहा। जब खाना आ गया उसने दिवाकर को कहा, " पंडितजी को छोड़ आओ।" ब्रिगेडियर के घर के बाहर एक छोटी सी वाटिका थी जिसके एक ओर दीवार थी और तीन ओर काँटेदार बाड़ लगी हुई थी। जब पंडितजी उधर से जाने लगे तो उनका पाँव फिसल गया और कुर्ते का दायाँ बाजू बाड़ में बुरी तरह से अड़ गया जिसके कारण उनका कुर्ता फट गया और बाजू में इतनी झरीटें आईं कि रक्त निकलने लगा। राय ने अपने भाई कुलश्रेष्ठ को तुरंत डीटोल लाने के लिए कहा। पंडितजी ने कहा, " कोई बात नहीं। मैं घर जाकर डिटोल लगा लूँगा।" वह जाने लगा तो राय ने कहा," आप ऐसे कैसे जाएँगे। दो मिंट लगेंगे। " इतने में कुलश्रेष्ठ डिटोल की शीशी लेकर आ गया। जब वह पंडित के आधे बाजू पर डिटोल लगा चुका उसे लगा कि कंधे के नीचे भी कुछ झरीटें थीं। जूँही वह वहाँ डिटोल लगाने लगा तो पंडित ने कहा, " इसे रहने दो, मुझे जल्दी है।" कुलश्रेष्ठ ने यह कहकर कि आप ऐसे कैसे जा सकते हैं उसने डिटोल लगाने के लिए कुर्ते को ऊपर किया तो उसे आश्चर्य

हुआ कि कंधे के पास बाजू के ऊपरी भाग पर कुछ गोदा हुआ था मगर उसे समझ नहीं आया कि वह कोई चिंह था या कोई शब्द। इतनी देर में पंडितजी गाड़ी में बैठ कर चले गये और कुलश्रेष्ठ उस बात को भूल गया।

दोपहर के भोजन के पश्चात जब सब अतिथि चले गए और केवल घर के सदस्य रह गए तो किसी कारण पंडितजी का नाम आया तब कुलश्रेष्ठ को गोदा याद आया। उसकी बात सुनकर सब चकित रह गए। राय ने उसे कहा," क्या तुम काग़ज पर उसका चिंह बना सकते हो?" कुलश्रेष्ठ ने काग़ज पर उसका कच्चा खाका बनाया परन्तु किसी को समझ में नहीं आया। राय ने वह खाका अपने पिता को दिखाया शायद उनको कुछ ज्ञान हो। पिता ने देखते ही कहा, " यह तो 'अल्लाह' शब्द है जिस का प्रयोग मुसलमान करते हैं।" सबको अचंभा हुआ और चिंता भी। राय ने तुरंत अपने दो साथियों को बुलाया जिन्हें वह साथ लेकर गोपीनाथ बाज़ार के मंदिर में गया जहाँ पंडितजी रहते थे। पंडितजी को वहाँ ना देखकर उनके होश उड़ गए। उन्होंने उसके कमरे में जा कर देखा, वह वहाँ भी नहीं था। मंदिर के अन्य कर्मचारियों और आसपास के लोगों से पूछा कि किसी ने पंडितजी को बाहर जाते हुए देखा था। मंदिर के बाहर एक दुकानदार ने बताया, " मैंने उनको कोई साढ़े बारह बजे गाड़ी से उतर कर अंदर जाते हुए देखा। वह कुछ घबराए से लगते थे। मंदिर के पिछवाड़ें में एक दीवार थी जो इतनी ऊँची नहीं थी कि उसे टाप कर पार ना किया जा सके। वे लोग साथ की गली से होकर पिछवाड़े गए जहाँ एक खुला मैदान था। वहाँ चार लड़के खेल रहे थे। उनसे जब पूछताछ की तो एक लड़के ने कहा, " मैंने पंडित जी को तो नहीं देखा परन्तु किसी व्यक्ति को दीवार फाँदते हुए

देखा'' प्रश्न करने पर उसने बताया, '' वह व्यक्ति नीले रंग की पैंट और सफ़ेद कमीज़ पहने हुए था और उसके सिर पर काले रंग की टोपी थी। उसके हाथ में छोटा सा अटैची केस था ।'' हाथ से संकेत देते हुए उसने बताया वह व्यक्ति किस दिशा में गया था। उस ओर आगे जा कर एक आटोरिक्शा का स्टैंड था वहाँ एक आटोरिक्शा वाले ने उन्हें बताया कि उस व्यक्ति ने उसकी आटो भाड़े पर की और धौला कुआँ उतर गया। वहाँ से वह कहाँ गया वह नहीं जानता था।

ब्रिगेडियर ने घर जाकर तुरंत सेना के गुप्त सेवा विभाग और मिलिटरि पुलिस को सूचना की। क्योंकि गोपीनाथ बाज़ार सैनिक क्षेत्र में आता था उन्होंने स्थानिय थाने में जाकर FIR दर्ज करवाई। फिर दो पुलिस अधिकारियों को साथ लेकर वे एक बार फिर पंडित के कमरे की तलाशी लेने के लिए गए और हर वस्तु को बड़ी सावधानी और ध्यान से देखा। वहाँ हिन्दु धर्म की कई धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त कई देवी देवताओं की मुर्तियाँ, कुछ वस्त्र और कुछ बर्तन मिले। एक पुलिस अधिकारी जब बिस्तर को झाड़ कर देख रहा था तो चारपाई थोड़ी सा अपनी जगह से हिल गई। उसकी दृष्टि किसी वस्तु पर पड़ी जो आधी खाट के नीचे और आधी खाट के बाहर थी। उसने जब उसे उठा कर देखा वह कम्प्यूटर की फ़लापी थी। क्योंकि कमरे में कोई कम्प्यूटर नहीं था और ना ही कम्प्यूटर अटैची केस मे आ सकता था उन्होंने अनुमान लगाया कि वह आदमी लैपटाप का प्रयोग करता था जो वह अटैची केस में छिपा कर अपने साथ ले गया। सेना गुप्त सेवा, दिल्ली पुलिस और केन्द्रिय गुप्तचर विभाग के उच्च अधिकारी उस व्यक्ति को ढूँढने में जुट गए जो पहिले पंडितजी कहलाता था और अब उसका कोई ज्ञात नाम नहीं था।

इतने में उस फ़लापी को दफ़तर के कम्प्यूटर में डाला गया तो देखनेवाले विस्मित हो गए। उस फ़लापी में नंगी स्त्रियों के चित्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। सब कहने लगे इन चित्रों में अवश्य कोई भेद है। तुरंत कम्प्यूटर कार्य योजना बनाने वाले अरविंद कुमार को बुलाया गया। उसने एक एक चित्र को विवेचना से देखा। उसे कुछ भ्रम हुआ कि जहाँ जहाँ महिला के बाल होते हैं वहाँ बालों के स्थान पर कुछ अक्षर थे। उसने जब फॉन्ट साइज़ को बढ़ा कर देखा तो उसका भ्रम सत्य निकला। वह शब्द उर्दू भाषा में थे जो उसकी समझ में नहीं आए। उसने शीघ्रता से उन सब का प्रिंट आउट निकाला जो उसने उर्दू जानने वाले को दिए। मगर वह भी उनका अर्थ नहीं समझ सका क्योंकि वह अक्षर कोड अर्थात गुप्त भाषा में थे। काफ़ी समय लगाने के उपरांत एक सैनिक अधिकारी ने उन्हें डिकोड किया अर्थात गुप्त भाषा का अर्थ निकाला। उससे यह सिद्ध हो गया कि वह व्यक्ति पाकिस्तान का जासूस था। उन्हें यह भी जानकारी मिली कि उसका मौलिक नाम दोस्त महमद था, वह कहाँ कहाँ जाता था, गोपनीय लेख और सूचना कैसे प्राप्त करता था और पाकिस्तान दूतावास में उसका किस किस से गठजोड़ था।

सैनिक अधिकारियों ने पाकिस्तान दूतावास के बाहर खड़े भारतीय पुलिस के कर्मचारियों से सम्पर्क किया तो यह जानकारी मिली कि उस व्यक्ति की रूपरेखा से हूबहू मिलता हुआ एक व्यक्ति दो बज कर चालिस मिंट पर पाकिस्तान दूतावास के अंदर गया। उस समय प्रतिदिन के कार्य के पश्चात दूतावास बंद हो चुका था परन्तु गेट पर खड़े पाकिस्तानी संतरी ने दस मिंट की पूछताछ के बाद उसे अंदर जाने दिया। फिर तीन बज कर पाँच मिंट पर पाकिस्तान दूतावास के काउन्सलर मीर मुशताक अली की गाड़ी

अंदर गई। आठ बजे तक ना काउन्सलर की गाड़ी बाहर आई ना ही वह व्यक्ति । अब यह स्पष्ट हो गया था कि उसका मुशताक अली के साथ जोड़ था। गुप्त पुलिस ने दूतावास की इमारत के बाहर और आसपास खड़े भारतीय पुलिस की संख्या बढ़ा दी और पुलिस की चार जीपें दूतावास के चार कोनों में थोड़ी दूर खड़ी कर दीं जिन का सेवन आपातकाल स्थिति में किया जा सकता था।

दोस्त महमद था तो पाकिस्तानी जासूस परन्तु वह भारतीय नागरिक था। उसका बड़ा भाई पाकिस्तान सेना में कर्नल था। पाँच वर्ष पूर्व जब वह अपने भाई से मिलने पाकिस्तान गया तो उसने अपने भाई को पाकिस्तान के लिए जासूसी करने पर उकसाया। धन के लालच में वह मान गया। उसे सिंध के एक नगर में एक हिन्दु द्वारा हिन्दु धर्म, संस्कृत भाषा और पंडिताई पर पूरे एक वर्ष प्रशिक्षण दिया। जब वह जासूस बन कर भारत लौटा तो अपनी पत्नी को पाकिस्तान छोड़ आया। वह जामा मस्जिद की एक गली में रहता था। जब वह दिल्ली वापिस आया तो दो दिन के पश्चात अपने मातापिता को कुछ बताए घर छोड़ कर चला गया। कुछ दिन एक गाँव में रहने के पश्चात वह पंडित के वस्त्र पहन कर सीधा गोपीनाथ बाज़ार आया और वहाँ के मन्दिर में गया। उसने मन्दिर के पुजारी को यह कहा, '' मैं जयपुर से पचास मील उत्तर में रेगड़पूर नाम के एक गाँव का रहने वाला हूँ। तीन वर्ष लगातार सूखा पड़ने के कारण वहाँ के अधिकतर ग्राम निवासी गाँव छोड़ कर चले गए हैं। असमर्थ होकर मैंने भी गाँव छोड़ दिया और भटकता हुआ यहाँ आया हूँ। यदि आप मुझे यहाँ कुछ दिन रहने की आज्ञा दें तो मैं आपका आभारी हूँगा। पुजारी ने उस पर दया करते हुए उसे वहाँ रहने की अनुमति दे दी। थोडे ही दिनों में

वह पुजारी से घुलमिल गया और तीन मास के उपरांत उसे कुछ पैसे देकर वहाँ से चलता किया। धीरे धीरे उसने गोपीनाथ बाज़ार में अपना जाल फैलाना आरंभ कर दिया जिसमें वह काफ़ी सफल रहा।

धौलाकुआँ से आटोरिक्शा से उतरने के पश्चात वह पैदल चलकर पाकिस्तान दुतावास आया और वहाँ उसकी भेंट काउन्सलर मीर मुशताक से हुई जिसे वह समय समय पर चुराई हुई सैनिक गुप्त सूचना देता था और मास में दो बार चोरी चोरी रात के समय उसे मिलने आता था। अब उसने मीर को कहा, "सेना के अधिकारियों को मेरे तथ्य का पता चल गया है। अब मैं वापिस मंदिर या किसी और स्थान या अपने घर नहीं जा सकता। वे अवश्य मुझे ढूँढ रहे होंगे।" थोड़ी देर रूकने के पश्चात उसने कहा, " आपके पूर्व काउन्सलर खाजा अबास बेग साहब ने मुझे वचन दिया था कि मुझ पर किसी प्रकार की विपत्ति आने पर आप मुझे तुरंत पाकिस्तान भेज देंगे। इस वचन की आपने भी पुष्टि की थी।"

मीर ने उत्तर दिया, " हम वचनबध हैं। हम आप को आज ही PIA की उड़ान से कराची भेज देंगे जिसका सारा प्रबंध मैं स्वयं करूँगा। मुझे केवल अपने राजदूत से आज्ञा लेनी है। तुम अच्छे समय पर यहाँ पहुँच गए हो। तुम्हारा अब कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" मीर वहाँ से उठकर अपने दफ़तर वाले कमरे में गया जहाँ उसने लगभग आधा घंटा राजदूत से बात की। जब वह वापिस आया उसने कहा, " सारी बात हो गई है। तुम को आज अवश्य भेज देंगे। जो कुछ पाण्डुलेख और जो भी सूचना फ़लापी में डाल कर ले आए हो हमें दे दो। वह हम डिपलोमैटिक बैग में डाल देंगे

जिस को भारत सरकार खुलवाना तो एक ओर रहा हाथ भी नहीं लगा सकती।''

दोस्त महमद ने सारे पत्र और फ़लापी अटैचीकेस से निकालकर काउन्सजर को दे दिए मगर उसे लगा वह एक फ़लापी जल्दी में पीछे छोड़ आया था। क्योंकि वह काफ़ी चतुर था उसने लुप्त फ़लापी की कोई बात नहीं की।

मीर ने उसे समझाया कि वह वहाँ से कैसे जाएगा ताकि उसके मन में कोई शंका ना रहे, ''तुम्हारे पास पासपोर्ट नहीं है। हम नया पासपोर्ट बना सकते हैं मगर उसपर भारत सरकार का विज़ा नहीं लगवा सकते। अब सुनो हमारी क्या योजना है। डिपलामैटिक बैग लेकर हमारा अटैशे महबूब अहमद तुम्हारे साथ जाएगा। तुम बुर्का पहन कर उसकी पत्नी के रूप में उसके साथ जाओगे। क्योंकि तुम दानो के पास डिपलोमैटिक पासपोर्ट होंगे ना काई तुम्हारी तलाशी ले सकेगा और ना ही तुम्हारा सामान खुलवा कर देख सकेगा।''

दोस्त महमद ने बात काटते हुए कहा, '' मगर मेरी तो दाढ़ी है।'' मीर ने हँसते हुए उत्तर दिया, '' मियां, हम मूर्ख नहीं हैं। हजाम आता ही होगा। तुम किसी बात की चिंता मत करो। समझो तुम पाकिस्तान सुरक्षित पहुँच गए। वैसे भी बुर्का से सिवाए तुम्हारी आँखों के और कुछ नहीं दिखाई देगा। फिर भी तुम्हें थोड़ी सावधानी से काम लेना होगा। तुम किसी अन्य व्यक्ति से कोई बात नहीं करना। एक पर्दानशीन औरत की तरह अपने शोहर के पीछे पीछे चलते रहना। वह ही सब कुछ करेगा। तुम्हारा इमिग्रेशन भी वही करवाएगा।''

दोस्त महमद को एकाएक ध्यान आया कि PIA की उड़ान तो दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा से आठ बजे होती है जबकि

सात तो वहीं बज गए थे। उसने जब यह बात मीर को कही तो मीर ने उसे बताया, " हम ने सब प्रबंध कर लिए हैं। PIA की उड़ान कराची से दिल्ली के लिए दो घंटे लेट चलेगी। इसका अर्थ यह है कि वह उड़ान यहाँ से कोई ग्यारह बजे होगी। अगर हवाई जहाज़ नियुक्त समय पर दिल्ली आ जाता हम उसे अधिक समय तक नहीं रोक सकते थे।" मीर की बात दोस्त महमद को भा गई और वह चुप हो गया।

कोई नौ बज कर तीस मिंट पर CD पलेट वाली एक गाड़ी पाकिस्तान दूतावास के गेट से निकली। क्योंकि गाड़ी के शीशे गहरे रंग के थे उसके अंदर बैठे हुए व्यक्ति बाहर से दिखाई नहीं देते थे। वैसे गाड़ी के अंदर तीन व्यक्ति थे - अटैशे महबूब अहमद, बुर्का पहने दोस्त महमद और ड्राईवर अल्लाह रखा। गाड़ी धौला कुआँ से होती हुई हवाई अड्डा जाने वाली सड़क पर मुड़ी। पालम त्रिसंगम को पार करके महीपाल पुर की ओर जाते हुए कोई एक किलोमिटर आगे जाकर रूक गई। महबूब अहमद ने अल्लाह रखा से पूछा, " क्या बात है?" उसने उत्तर दिया, " गाड़ी में कुछ गड़बड़ है। अभी देखता हूँ।" महबूब अहमद ने कहा, " मियां , जल्दी करो। समय बहुत कम है।" ड्राईवर ने गाड़ी से नीचे उतर कर हुड को उठाकर इंजन से कुछ छेड़छाड़ की और फिर कहने लगा, " धक्का लगाना पड़ेगा।"

" मियां मैं कैसे धक्का लगा सकता हूँ। मेरे पास तो डिप्लोमैटिक बैग है। मैं तो इसे एक सेकण्ड के लिए भी नहीं छोड़ सकता।" अटैशे ने उत्तर दिया।

"जनाब, कुछ तो करना पड़ेगा। किसी राह चलते व्यक्ति को भी नहीं कह सकते। पता नहीं कौन हो।"

"यह तो तुमने बड़ी कठिनाई में डाल दिया।"

दोस्त महमद की ओर इशारा करते हुए ड्राईवर ने कहा " इन को धक्का देना पड़ेगा।"

"इन्होनें तो बुर्का पहन रखा है। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे" महबूब अहमद ने कहा।

"वह अगर थोड़ी देर के लिए बुर्का उतार दें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

महबूब अहमद के अनुरोध पर दोस्त महमद बुर्का उतार कर गाड़ी को पीछे से धक्का देने लगा। दो मिंट में गाड़ी फिर से चल पड़ी। मगर दोस्त महमद के हाथों के तोते उड़ गए जब उसने देखा कि ड्राईवर गाड़ी भगा कर ले गया। घबरा कर उसने सड़क के साथ जंगल में भागने का प्रयास किया मगर इससे पूर्व वह भागने में सफल होता भारतीय पुलिस के कर्मचारियों ने जो पीछे पीछे गाड़ी में आ रहे थे उसे तुरंत दबोज लिया। दूतावास की गाड़ी महीपाल पुर से मुड़ कर वंसत कुंज से होती हुई वापिस दूतावास चली आई। उस रात PIA की कोई उड़ान नहीं थी।

जब अल्लाह रखा गाड़ी भगाकर ले गया दोस्त महमद को इस बात का प्रमाण तो मिल ही गया कि पाकिस्तान दूतावास के अधिकारियों ने इस्लाम के माध्यम से उसके साथ विश्वासघात किया था। उसने अपने भाई के उकसाने पर और बाद में पाकिस्तान के कई सरकारी अधिकारियों के भड़काने पर अपनी पत्नी को छोड़ा, अपने माँ बाप को छोड़ा, अपने मित्रों और रिश्तेदारों को छोड़ा, बचपन के साथियों को छोड़ा, अपना घर छोड़ा और एक प्रकार से पंडित का रूप धारण करके इस्लाम को छोड़ा। इन सबका परिणाम क्या निकला। उस की मूर्खता, भोलापन और अंधविश्वास का अनुचित लाभ उठा कर पाकिस्तान सरकार ने उसका उपभोग किया और जब वह संकट

में फंस गया उसे इस प्रकार से निकाल दिया जैसे दूध में से मक्खी। उसे यह स्वीकार करने में अब कोई दुख नहीं था कि वह पाकिस्तान के लिए जासूसी करता था। उस ने अपराध स्वीकृत करते हुए सारी कहानी आरंभ से अंत तक बताई और उन दो भारतीय व्यक्तियों के नाम भी बताए जो उसकी सहायता करते थे। पुलिस ने उन दो व्यक्तियों को पकड़ा और केस की फ़ाईल पूरी हो जाने पर तीनों के विरूद्ध दण्डन्यायालय में भूमिका डाली।

तीन वर्ष तक प्राक्कथन चलता रहा । क्योंकि तीनों अपराधियों को अपने संबंधियों से कोई सहायता ना मिलने के कारण वे अपना प्रतिनिधि नहीं रख सकते थे सरकार ने उन्हें अपने खर्च पर अभिवक्ता दिया ताकि उन के साथ कोई अन्याय ना हो। जब तक कार्यवाही चलती रही वे जेल मे रहे क्योंकि तीनों पर देशद्रोही का अभियोग होने के कारण उनकी प्रतिभूति का आवेदन पत्र न्यायाधीश ने स्वीकृत नहीं किया । परन्तु उनके भाग्य अच्छे थे। न्यायाधीश ने उन्हें दो प्रावैधिक कारणों पर छोड़ दिया। पहिला यह कि उन तीनों में से कोई भी पाकिस्तान दूतावास के अधिकारियों तथा कर्मचारियों से लेनदेन करते हुए रंगे हाथों नहीं पकड़ा गया और ना ही पुलिस के पास कोई ऐसा प्रमाण था कि वे जासूस थे। जहाँ तक दोस्त महमद का अपनी वास्तविकता को छिपा कर पंडित बन कर कार्य करने का प्रश्न था ऐसा कोई कानून नहीं था जो एक धर्म के मानने वाले को दूसरे धर्म का काम करने से रोके। दूसरा यह मान लिया फ़लापी में दोस्त महमद का नाम आता था। मगर उससे यह सिद्ध नहीं होता था कि जो व्यक्ति अपराधी के रूप में न्यायालय मे खड़ा किया गया था वह वही व्यक्ति था।

जब दंडनायक ने दोस्त महमद और अन्य दो व्यक्तियों को अपराध से मुक्त कर दिया तो पुलिस को असमर्थ होकर उन्हें छोड़ना पड़ा। इस निर्णय से पुलिस, सेना और गुप्तविभाग के अधिकारियों को निराशा के साथ दुःख भी हुआ। पुलिस का एक उच्च अधिकारी नेगी कहने लगा, " इतना परिश्रम करो, दोड़भाग करो, प्रमाण इकट्ठे करो, दिन रात एक करो परिणाम क्या निकला। दंडनायक ने उन देशद्रोहियों को प्रावैधिक कारणों पर छोड़ दिया।"

दूसरा कहने लगा, " यार तभी तो मैं कहता हूँ सालों को गोली मार दो। ना रहेगा बाँस ना बजेगी बाँसूरी।"

"गुरूजी, हम किस किस अपराधी का गोली मारेंगे। कोई कारण तो होना चाहिए।" नेगी ने कहा।

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात नेगी फिर कहने लगा, " यह दोस्त महमद वैसे ही मर जाएगा।"

"वह कैसे? " साथी ने पूछा।

"अकेलेपन से। ना कोई यार दोस्त इस के पास आएगा और ना इसे कोई घर बिठा कर रोटी खिलाएगा। कोई इसे काम नहीं मिलेगा और फिर हमारे कर्मचारी भी तो इसके पीछे साये की तरह लगे रहेगें।"

नेगी ने जो अपने अनुमान और अनुभव से कहा था वह सिद्ध हुआ। जब दोस्त महमद तिहाड़ जेल से छूटा कोई भी उसे लेने के लिए नहीं आया। वह वहाँ से सीधा अपने माँ बाप के घर गया मगर उन्होंने उसे अंदर नहीं आने दिया। उसके बाप ने कहा, "तुम देशद्रोही हो। जिस थाली में खाया, उसी में छेद किया।" वह बहुत गिड़गिड़ाया, पाँव पड़ा मगर उन्होंने उसे शरण देने से साफ इकांर कर दिया। वह अपने पुराने मित्रों के पास गया उन्होंने तो उसे

पहचानने से भी इंकार कर दिया। उसे कोई काम देने के लिए तैयार नहीं था। वह मस्जिद के इमाम के पास गया। उसने भी वही कहा जो उसके बाप ने कहा था। वह पाकिस्तान भी नहीं जा सकता था। उसकी गिरफ़तारी का समाचार सुनते ही उसकी पत्नी ने उसे छोड़ दिया था और वहीं किसी पाकिस्तानी से विवाह कर लिया था। अब वह भिकारी बनकर सड़कों पर माँगने लगा। कोई उसे खाने के लिए कुछ दे देता तो कोई उसे धुतकराता । उसके पास रहने लिए कोई स्थान नहीं था। वह रात को सड़क की पगडंडी पर सो जाता या किसी पार्क में । वह इस अपमान को अधिक समय तक सहन नहीं कर सका और सरदी की एक रात को उसने सोए सोए दम तोड़ दिया। उसके मृतक शरीर को कोई लेने नहीं आया। नगर निगम के कर्मचारियों ने उसे बिना कोई अंतिम संस्कार किए नगर से बाहर गढ्डा खोदकर दबा दिया। पुलिस को दंडनायक के निर्णय के विरूद्ध अपील करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

* * * * * * * * *

अवैतनिक दंडनायक

जब हिन्दुस्तान में अंगेज़ों का शासन था हर जनपद का शासक प्रायः अंग्रेज़ ही होता था। पंजाब प्रांत में झंग जनपद का शासक भी एक अंग्रेज़ था जिसका नाम विल्यम ब्रिजस्टोन था। रंग तो उसका गोरा था परन्तु डीलडौल में गामा पहलवान से कम नहीं था। कद छे फुट से एक इंच कम और शरीर का भार एक सौ अस्सी पाउंड था । एक मुर्गी प्रतिदिन चट कर जाता था और अंग्रेज़ी शराब तो यों पीता था जैसे मरूस्थल में ऊँट पानी पीता है। जब दौरा करने के लिए वह घोड़ी की पीठ पर बैठता था एक बार तो घोड़ी ऐसे घबरा जाती थी जैसे उसके ऊपर घोड़ा सवार हो गया हो। रात को सोए हुए इतने ज़ोर से खरांटे लेता था कि दीवारों के कान फट जाते थे। दो एकड़ में फैली हुई विशाल कोठी थी जिसके चारों ओर सुन्दर वाटिकाएँ थीं। किसी महाराजा से कम नहीं थी उसकी शोभा। सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। डेप्यूटि कमिशनर होने के अतिरिक्त वह जनपद दंडनायक भी था। उसके नीचे दो और दंडनायक थे। इसलिए वह केवल अपील केस ही सुनता था। क्योंकि वह शराब बहुत पीता था न्यायालय में ग्यारह बजे से पूर्व नहीं आता था और दो बजे जब लंच के लिए अपनी कोठी चला जाता था तो वापिस बहुत कम आता था। उसकी पत्नी जैनिफ़र को झंग की गरमी ऐसे काटती थी जैसे मच्छर काटता हो। वह वर्ष में आठ मास इंगलैंड में ही रहती थी। केवल सर्दियों में चार मास के लिए अपने पति के साथ रहने के लिए आती थी। उसके तीन बच्चे थे जो लंदन में पढ़ते थे।

जब ब्रिजस्टोन न्यायालय में केस सुनता था उसका निर्णय लेने की विधि बड़ी विचित्र थी और कई अभियुक्ताओं के लिए दुःखदायक भी थी। उसने अपने प्रस्तुतकार अर्थात रीडर को स्थाई आदेश दे रखा था कि अपील के जितने केस हों, उनकी बिना छानबीन किए, बिना प्राथमिकता को ध्यान में रखे और बिना केस की गंभीरता को देखे, दो समान भागों में बांट कर मेज़ पर रख दो। उदाहरणतः यदि कुल पच्चीस केस होते तो दो ढेर बारह बारह के बनाए जाते और केवल पचीसवें केस की सुनवाई होती। यदि कुल चौबीस केस होते तो उसी प्रकार दो भाग बारह बारह के बनाए जाते। वह हर ढेर से एक केस उठाता और उसकी सुनवाई करता। फिर शेष ग्यारह के एक ढेर को बिना सुनवाई स्वीकृत करता और दूसरे ग्यारह के ढेर को ख़ारज कर देता। उसका न्यायालय एक प्रकार से जादू का डिब्बा था जिसमें से कुछ भी निकल सकता था। जब तक वह झंग में रहा उसके निर्णय लेने की यही विधि थी। किसी को साहस नहीं था कि उसकी निंदा मुलतान के कमिशनर या पंजाब के गवर्नर से करे। पराजय अभियुक्ता बस उच्च न्यायालय में एक और अपील डाल सकता था परन्तु यह इतना सरल नहीं था क्योंकि उच्च न्यायालय लाहौर में था जो झंग से तीन सौ मील दूर था। वहाँ जाना और इतना खर्च करना हर व्यक्ति के बस का रोग नहीं था।

वैसे तो ब्रिजस्टोन हँसमुख और विनोदात्मक था परन्तु कुछ सनकी भी था। यदि कोई नियम विरूद्ध या मूढ़ काम कर दे तो अपने मंत्रणा अधिकारियों के समझाने पर भी अपना वचन तथा निर्णय बदलता नहीं था। एक दिन वह घोड़ी पर सवार अपने निजी सचिव और दो अन्य जनपद अधिकारियों के साथ झंग के आसपास वाले गाँव में दौरा करने के लिए कोठी से निकला। कुछ

दूर नगर से बाहर उसने आठ-दस कुत्तों को अपने सिर आकाश की ओर करके ज़ोर ज़ोर से विलाप करते हुए देखा जैसे वे किसी के मरने का शोक कर रहे हों। उसने अपने निजी सचिव एंग्लोईडियन सैमूल दत्ता से पूछा, " कुत्तों की ऐसी बेसुरी आवाज़ मैंने पहले कभी नहीं सुनी। क्या तुम जानते हो इतने कुत्ते एक साथ मिलकर क्यों चिल्ला रहे हैं?" दत्ता ने सिर हिला कर कहा वह नहीं जानता था। अन्य अधिकारियों से पूछने पर भी उन्होंने वही उत्तर दिया । आगे जा कर ब्रिजस्टोन ने एक कृषक को देखा जो अपने कंधे पर हल रखकर घर जा रहा था। उसने दत्ता को कहा, " इससे पूछो।" दत्ता ने कृषक को आवाज़ लगाई । गोरे साहब को घोड़ी पर बैठा देख वह इतना घबराया कि हल उसके कंधे से नीचे गिर गया और वह थर थर काँपने लगा। दत्ता ने उसकी यह अवस्था देखकर उसे समझाया, " डरो नहीं, साहब तुम से कुछ पूछना चाहते हैं।" पूछने पर कृषक ने बताया कि कुत्तों का इस प्रकार एक जुट हो कर चिल्लाना आने वाले सूखा का संकेत है। एक अधिकारी ने कहा, " जनाब यह आदमी गंवार है। अंतरिक्ष विज्ञान विभाग की भविष्यवाणी तो यह कहती है कि पिछले कई वर्षों की तुलना में इस वर्ष वर्षा अधिक होगी।"

दुर्भाग्य से वर्षा नहीं हुई और जैसा कि कृषक ने कहा था सूखा पड़ गया। साहब को बड़ा क्रोध आया। उसने पहले तो मौसम विभाग के कर्मचारियों और अपने उच्च अधिकारियों को खूब डांटा और फिर कृषक को बुलवाने का आदेश दिया। साथ में कहा, " उसके आते ही उसे मेरे सामने उपस्थित करना।" जब वह आया उस समय साहब अपनी कोठी के पिछले बगीचे में बैठा अंग्रेज़ी शराब पी रहा था। कृषक के आते ही उसने दत्ता को कहा, " यह

व्यक्ति ना केवल समझदार है अपितु दूरदर्शी भी है। हम इसे अवैतनिक दंडनायक नियुक्त करते हैं।''

पहले तो डी.सी. साहब का निर्णय कृषक को समझ नहीं आया और जब दत्ता ने उसे समझाया तो वह हाथ जोड़ कर कहने लगा, '' जनाब, मैं अनपढ़ व्यक्ति हूँ। मुझे तो विधि का क ख ग भी नहीं आता। मैं न्यायालय में क्या करूँगा। यदि आप मुझसे इतने प्रसन्न हैं तो मुझे कुछ ज़मीन दे दीजिए।''

ब्रिजस्टोन ने कहा, '' तुम इस बात की चिंता मत करो। हम तुम्हें विधि में निपुण प्रस्तुतकार देंगे। वह ही सब कुछ करेगा। तुम केवल जहाँ जहाँ वह कहे अपने हस्ताक्षर कर देना। परन्तु एक बात का ध्यान रहे जो निर्णय तुम लो उसे ना वापिस लेना और ना ही बदलना।''

कृषक ने कहा, '' जनाब, मुझे वेतन तो मिलेगा नहीं, मैं अपना खर्च कैसे चलाऊँगा।''

''तुम इस की भी चिंता मत करो । तुम्हारा सारा खर्च सरकार करेगी। तुम्हारे रहने, खाने पीने इत्यादि का सब प्रबंध हो जाएगा'' थोड़ा साँस लेने के पश्चात साहब ने कहा, ''अब तुम जाओ, विश्राम करो और एक सप्ताह के अंदर अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर आ जाना।''

अगले दिन दत्ता ने साहब को कहा, '' हमें राजपत्र निकालना पड़ेगा।''

''तो निकाल दो, इस में क्या कठिनाई है?''

''जनाब, इस व्यक्ति का नाम बड़ा विचित्र है।''

''क्या नाम है?''

''गीदड़ रामा''

''तो क्या हो गया?'' डी.सी. ने आश्चर्य से पूछा।

"जनाब , यहाँ गीदड़ का रूपक अर्थ है डरपोक"
"दत्ता, तुम भी कमाल के आदमी हो। हमारा नाम ब्रिजस्टोन है, क्या इसका अर्थ यह निकालोगे कि मैं पुल का पत्थर हूँ।"
"वह तो ठीक है जनाब, मगर .... "
डी.सी. ने बात काटते हुए कहा, " ठीक है, कोई और नाम रख दो"। थोड़ी देर सोचने के पश्चात साहब ने कहा, "गधा राम रख दो।"
"जनाब, यह तो और भी बुरा है। यहाँ लोग गधे को मूर्ख समझते हैं। दंडनायक को मूर्ख तो नहीं होना चाहिए।"
"तो तुम ही कोई नाम सोचो।"
"मेरे विचार में इसका नाम गंडासा राम रख देते हैं।"
"गंडासा क्या होता है?"
"गंडासा चारा काटने वाले अस्त्र का नाम है।"
" तुम्हें ठीक लगता है, तो यही नाम रख दो।"
दत्ता ने यह नाम इसलिए चुना की गाँव में वह कृषक चारा काटता था, न्यायालय में विधि को काटेगा।
जब गंडासा राम को झंग में चार कमरे का मकान, अच्छे वस्त्र , दो नौकर, एक माली और एक अर्दली दिए गए उसका तो भाग्य जाग उठा । न्यायालय की कुर्सी पर वह यूँ जमकर बैठता था जैसे वह कुर्सी उसे दाय में मिली हो। आरंभ में तो वह चुपकर के बैठा रहता और जो निर्णय उसका प्रस्तुतकार लेता वह उसपर अपने हस्ताक्षर कर देता परन्तु हस्ताक्षर करने वाले स्थान के ऊपर वह अवश्य लिखता, " मैंने यह हस्ताक्षर प्रस्तुतकार के कहने पर किए हैं" ताकि कल कोई अनुचित या अनियमित निर्णय लेने पर उस पर कोई दोष ना लगाया जा सके। परन्तु वह अधिक समय तक चुप नहीं रह सका ।उसने सोचा दंडनायक बनने का कोई अर्थ

नहीं था यदि वह एक गुंगे बहरे के समान कुर्सी पर बैठा रहे। अब उसने हर केस मे कुछ ना कुछ हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया।

एक दिन पुलिसवाला दो चोरों को हथकड़ी लगाए न्यायालय में सुनवाई के लिए लेआया। उन अपराधियों का वकील भी साथ में था। गंडासा राम ने अपने प्रस्तुतकार मंगल देव से पूछा, " ये कौन हैं? इनका क्या अपराध है?" मंगल देव ने उत्तर दिया, " ये चोर हैं। इन्होंने घर के अंदर घुस कर चोरी की है।" गंडासा राम ने फिर वकील की ओर संकेत देते हुए कहा, " यह कौन है?"

"यह इनका वकील है।"

"यह यहाँ क्या करने आया है?"

"यह इन चोरों के केस का अनुकरण करने आया है।"

"वह क्या होता है?"

"वह यह सिद्ध करने आया है कि ये चोर नहीं हैं।"

"अब मैं समझा। इन व्यक्तियों ने चोरी की है और यह उनको बचाने आया है।"

"जी हाँ"

"तो ऐसा करते हैं चोरों को दो वर्ष के लिए जेल में डाल देते हैं और क्योंकि वकील इन का पक्ष ले रहा है इसे छे मास का जेल दंड देते है।"

यह सुनकर न्यायालय में उपस्थित लोग चकित रह गए। मंगल देव ने कहा, " अभी तो इस केस की सुनवाई नहीं हुई है, हम दंड कैसे दे सकते हैं।"

गंडसा राम ने बड़ी गंभीरता से कहा , " हमें ब्रिजस्टोन साहब के स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया था कि जो निर्णय एक बार ले लो, उसे

कदाचित नहीं बदलना। यदि ये हमारे निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं तो अपील कर सकते हैं?''

अगले दिन एक पुलिस वाला एक औरत को न्यायालय में ले आया । गंडासा राम ने मंगल देव से पूछा, '' यह औरत कौन है?''

''जनाब, यह वेश्या है।''

''वेश्या! वेश्या क्या होती है?'' गंडासा राम ने आश्चर्य से पूछा।

'' यह बाज़ारी औरत है।''

''तो क्या हुआ? क्या औरत बाज़ार में नहीं घूम सकती?''

''जनाब, यह गंदा काम करती है। अपना शरीर बेचती है।''

'' तो क्या हुआ? उसका अपना शरीर है।''

''ऐसा करना विधि का उल्लघंन है।''

गंडासा राम ने कई बार मंगल देव को न्यायालय में अंग्रेज़ी शब्द स्टेटमेंट का प्रयोग करते हुए सुना था। उसने उस स्त्री की ओर देखते हुए मंगल देव को कहा, '' पहले इसकी स्टेटमेंट लेते हैं।'' उस औरत को अंग्रेज़ी नहीं आती थी। उसने शब्द स्टेटमेंट का अर्थ कुछ भिन समझा । वह गंडासा राम की ओर देखकर बोली, '' माई बाप, कल शाम दो व्यक्तियों ने मेरी स्टेटमेंट ली। कल रात थाने में थानेदार ने ली। फिर पिछली रात को दो सिपाहियों ने ली। पाँच बार लेने के बाद मेरी स्टेटमेंट सूज गई है। अब आप के योग्य नहीं रही। दो चार दिन रूक जाईए, जब ठीक हो जाए आप भी ले लेना। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

न्यायालय में सब उपस्थित जन ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे। गंडासा को क्रोध आ गया। उसने लकड़ी के हथोड़े को मेज़ पर ज़ोर ज़ोर से मारते हुए कहा, '' आर्डर, आर्डर। यह न्यायलय है

कोई रंगमंच या बाज़ार नहीं।'' उसे फिर भी उस वेश्या की बात समझ में नही आई।

गंडासा राम कभी कभी उलटपुलट बातें भी करता था और उलटपुलट निर्णय भी लेता था। परन्तु जहाँ उसका निजी लाभ या स्वार्थ हो वह बड़ी सावधानी और सोच समझ से काम लेता था। एक बार दो सिपाही किसी युवा व्यक्ति को हथकड़ी लगाए न्यायालय में आए। उस युवक ने सफ़ेद खद्दर का कुर्ता पजामा पहन रखा था और सिर पर सफ़ेद टोपी थी। न्यायालय के अंदर आते ही वह बड़े ज़ोर ज़ोर से नारे लगाने लगा, '' इंकलाब ज़िन्दाबाद ।इंकलाब ज़िन्दाबाद! हम स्वतंत्रता लेकर रहेंगे। अंत में विजय हमारी होगी।''

गंडासा राम ने मंगल देव से पूछा, '' यह नवयुवक कौन है?''

''यह अपने आप को स्वतंत्रता सेनानी कहता है ।परन्तु वास्तव में यह देशद्रोही है।'' मंगल ने उत्तर दिया।

'' मुझे थोड़ा विस्तार से समझाओ।'' मंगल देव ने उसे पूर्ण स्वराज्य के लिए हिन्दुस्तान में जो संघर्ष चल रहा था उसके विषय में बताया। गंडासा राम ने कहा, ''अब मैं समझा। यह लोग चाहते हैं अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़ कर चले जाएँ।''

''जी हाँ।'' मंगल देव ने उत्तर दिया।

''इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिजस्टोन साहब भी यहाँ से चले जाँए। वह चले गए, तो हमारा क्या होगा?''

''जनाब, आपको यह कुर्सी छोड़नी पड़ेगी क्योंकि आप इस कुर्सी पर डी.सी. साहब की कृपा से बैठे है।''

''ठीक है। हम इसे आजीवन बंदीकरण का दंड देते हैं। ना यह जेल से बाहर रहेगा, ना यह स्वंतत्रता माँगेगा।'' गंडासा राम ने पूर्ण विश्वास से कहा।

"हम ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि आपका क्षेत्राधिकार केवल छे मास और पाँच सौ रूपये अर्थ दंड तक सीमित है। परन्तु मैं इसका उपाय जानता हूँ। हम इसकी प्रतिभूति अस्वीकार कर देते हैं। जेल में पड़ा रहेगा और पड़े पड़े यह अपने आप सड़ जाएगा।"

"यह ठीक कहा तुमने। ऐसा ही करो।" गंडासा राम ने फिर पूछा, " इस केस के बाद कोई और केस भी है?"

"जी, एक और है।"

"हम दोहपर का भोजन करके आते हैं। तब तक तुम इस नवयुवक का केस पूरा कर लो।"

दोहपर के भोजन के पश्चात जब न्यायालय की कारवाई फिर आरंभ हुई तो माम चंद पटवारी का केस प्रस्तुत किया गया। उस पर घूस खाने का आरोप था। जब माम चंद ने कुर्सी पर गंडासा राम को बैठे हुए देखा तो वह थर थर कांपने लगा क्योंकि उसने एक बार गंडासा राम से घूस खाई थी जब वह कृषक था। गंडासा राम ने भी उसे झट पहचान लिया। वह तुंरत बोल पड़ा, " यह व्यक्ति घूसखोर है। हम इसे अच्छी प्रकार से जानते हैं। इसने हम से भी घूस खाई थी।"

मंगल देव ने टोकते हुए कहा, " आप सब के सामने ऐसा मत कहिए क्योंकि घूस लेना और देना दोनो अपराध है।"

"मगर इसे कड़े से कड़ा दंड मिलना चाहिए।" गंडासा राम ने बदले की भावना से कहा।

जब केस की सुनवाई समाप्त हो गई तो गंडासा राम ने मामचंद को छे मास का जेल दंड और पाँच सौ रूपये का अर्थदंड सुनाया। परन्तु अपील पर मामचंद छूट गया और उसकी नौकरी उसे वापिस मिल गई। परन्तु उसके छूट जाने की सूचना गंडासा राम को नहीं मिली।

गंडासा राम पंद्रह मास तक अवैतनिक दंडनायक की कुर्सी पर डटा रहा और कई प्रकार की मूर्खताएँ करता रहा। वह शायद आगे भी उसी कुर्सी पर बैठा रहता यदि विल्यम साहब की बदली ना हो जाती। उसका स्थान भारतीय जनपद सेवा के एक हिन्दुस्तानी ने ली। अपना पद संभालने के एक दिन उपरांत उसने गंडासा राम को कुर्सी छोड़ने का आदेश दिया। गंडासा राम के साथ उसका मकान और अन्य सुखसाधन भी छीन लिए गए। उसे विवश तथा निराश होकर अपने गॉव वापिस जाना पड़ा । गॉव पहुँच कर जब उसे पता चला कि पटवारी से मिलकर गॉव के मुख्या ने उसकी ज़मीन पर नियंत्रण कर लिया था उसे आश्चर्य तथा विशाद हुआ। परन्तु पंद्रह मास तक दंडनायक की कुर्सी पर बैठ कर वह विधि के कई दावपेच समझ गया था। वह सीधा नये डी.सी. के पास गया और उसे अपना कथन संक्षिप्त में बताया। डी. सी. ने तुरंत स्थानिय थानेदार को बुला कर आदेश दिया कि चौबीस घंटे के अंदर गीदड़ राम की ज़मीन उसे वापिस मिल जानी चाहिए। आदेश अनुसार उसे अपनी ज़मीन फिर से मिल गई।

कभी कभी आसपास के कृषकों के साथ वृक्ष की छाया में दोपहर को विश्राम करते समय गीदड़ राम उपनाम गंडासा राम बड़े गर्व से अपने दंडनायक के समय की कहानियां सुनाता और कभी कभी अकेले में ठंडी सॉस भी भरता।

* * * * * * * *

हनुमान

नाम तो उसका गजराज था परन्तु लोग उसे हनुमान या बजरंग बली कह कर बुलाते थे। इसके दो कारण थे । पहला यह वह हर वर्ष रामलीला में हनुमान का अभिनय करता था। काफ़ी लम्बा चौड़ा था। छे फुट कद, गोल चेहरा, तोते जैसी लम्बी नाक, साँवला रंग, बड़े बड़े हाथ और गठा शरीर था। सत्तर किलो से अधिक वज़न था। जब वह हाथ में गदा लेकर वानर जैसे छलांग लगाता हुआ आता था तो रंगमंच के नीचे के फट्ठे चीं चीं करने लगते थे और कई बार दर्शक उसे देख कर दंग रह जाते थे। जब वह गदा ऊपर उठा कर रावण को ललकारता था तो रावण भी भयभीत हो जाता था। अशोक वाटिका में जिस आंनद से वह फल तोड़ तोड़ कर खाता था और प्रेक्षकों की ओर फेंकता था वह दृष्य अति रोचक होता था। पहले वह मासाँहारी था परन्तु रामलीला मे जाकर वह शाकाहारी बन गया। दूसरी बात यह थी वह हनुमान भक्त था। हर मंगलवार वह हनुमान मन्दिर जा कर महावीर की पूजा करता था।

वह पेशे से ड्राईवर था। ऐसा सुनने में आया था जब वह पच्चीस वर्ष का था एक पैदल चलता व्यक्ति उसकी बस के नीचे आ कर मर गया । वास्तव में दोष पैदल चलने वाले का था मगर न्यायधीश ने उसकी उक्ति स्वीकार नहीं की और उसे एक वर्ष का जेल दंड दे दिया। उसे बड़ा क्रोध आया जिसे वह दिल में दबाए रखा। जेल से छूटने के तुरंत पश्चात वह न्यायधीश की कोठी पर उसकी हत्या करने के विचार से गया। न्यायाधीश उस समय घर

पर नहीं था। दुर्भाग्य से उसकी युवा पुत्री घर पर अकेली थी। गजराज ने उसे पकड़ कर उसका बलात्कार किया। वह लड़की इस मर्माघात को सहन ना कर सकी और विष खा कर आत्महत्या कर ली। क्योंकि आत्महत्या करने से पूर्व वह अपने पीछे कोई लिखित नहीं छोड़ गई थी गजराज बच गया। परन्तु उसे इस घटना से बहुत दुःख हुआ जिसने एकाएक उसके जीवन में एक परिवर्तन ला दिया। वह हनुमान का पुजारी बन गया। क्योंकि श्रीराम के हनुमान ने विवाह नहीं किया था गजराज ने भी विवाह नहीं किया।

गजराज जयश्री परिवहन की बस चलाता था। वह बस सवेरे आठ बजे कुरूक्षेत्र से चल कर करनाल, पानीपत और सोनीपत से होती हुई लगभग बारह बजे दिल्ली पहुँचती थी। जहाँ अन्य बसें एक सौ दस मील की यात्रा पाँच घंटे में पूरा करती थीं गजराज उसे चार घंटे में करता था। उसी बस को दिल्ली से तीन बजे वापिस कुरूक्षेत्र ले जाता था। वह उस बस को इतनी सावधानी और फुर्ती से चलाता था और उसकी इतनी रूचि से देखभाल करता था जैसे वह उसकी स्वामीभक्त पत्नी हो। वह भी गजराज की हर चाल समझती थी। स्टीयरिंग व्हील को ज़रा से हिलाते ही वह अपनी दिशा बदल लेती थी। ब्रेक पर गजराज का पैर पड़ते ही वह अपनी गति धीमी कर लेती थी। उसी प्रकार एक्सलेटर पर गजराज का पाँव पड़ते ही वह अपनी गति तुरंत बढ़ा लेती थी। जहाँ अन्य बसें दस वर्ष से पूर्व ही लड़खड़ा जाती थीं या दम तोड़ देती थीं उसकी बस बारह वर्ष की हो गई थी मगर अभी भी उसमें जान थी। जो यात्री गजराज की बस से एक बार यात्रा के लिए जाता वह विस्मित होता था कि इतनी तीव्र गति से चलाते हुए भी उसका बस पर पूरा नियंत्रण था।

कुरुक्षेत्र का बस अड्डा काफ़ी बड़ा था। वहाँ जयश्री परिवहन का दफ़्तर क्या था एक बड़ा सा हाल था जो साठ फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा था। उस हाल के दाएँ भाग में परिवहन का मैनेजर बैठता था और बाई ओर परिवहन का क्लर्क और कोषाध्यक्ष बैठते थे। दोनो भागों के आगे विभाजन दीवार डली हुई थी ताकि शोर के कारण मैनेजर के काम में बाधा ना पड़े। बीच वाले भाग में विशेष यात्रियों के बैठने के लिए कुछ कुर्सियां, सोफ़ा और एक मेज़ पड़े हुए थे। कोषाध्यक्ष के कमरे के बाहर की दिवार के साथ एक बैंच रखी हुई थी जहाँ ड्राईवर , कंडक्टर इत्यादी अपना वेतन लेने के लिए या हिसाब किताब करने के लिए आकर बैठ जाते थे। कभी कभी वे गपशप लगाने के लिए भी बैठ जाते थे। क्योंकि गजराज की सेवा सप्ताह में केवल पाँच दिन थी और वह अकेला था, वह भी कभी कभी वहाँ आकर बैठ जाता था । बस अड्डे के बाहर चायपानी भोजन करने और छोटी छोटी वस्तुएँ बेचने वाली कई दुकानें थीं जिनका उपयोग यात्रियों के अतिरिक्त परिवहन के कर्मचारी भी करते थे।

बस अड्डा के उत्तर में एक छोटा सा जंगल था। किसी समय वह अति विशाल था परन्तु अंधाधुंध वृक्ष काटने से यह जंगल काफ़ी सुकड़ गया था। बहुत से जंगली जानवर वहाँ से भाग गए थे परन्तु वानरों ने अपनी जन्मभूमि नहीं छोड़ी। वृक्ष काटने से उनके निवास स्थान टूट गए थे, फलों की उपलब्धि नाम मात्र की रह गई थी और खेलकूद तथा मनोरंजन के लिए वृक्षों की टहनियों से लटकने और छलांगें लगाने की सुविधाएं भी जाती रही थीं । वे जानते थे कि इन वृक्षों को काटने वाला स्वार्थी मानव है जिसके कारण उन्हें मानव जाती से चिड़ सी हो गई थी। जब उन्हें खाने के लिए कुछ ना मिलता वे एक टोली बना कर बस अड्डे आ जाते थे

और छीना झपटी करके अपना पेट भरते थे। कई दुकानदार उनकी चाल को समझ गए थे और उनसे पंगा नहीं लेते थे। उदाहरणः एक दुकानदार शीशे के मरतबानों मे मीठी गोलियां , टाफ़ी , इत्यादि रखता था। जब कोई बंदर वहाँ आता वह मरतबान का ढकना उठाता और अपना हाथ डाल कर मुट्ठी में मीठी गोलियां भर कर भाग जाता। दुकानदार उसे कुछ नहीं कहता था। एक प्रकार से दोनो में समझोता था कि दुकानदार बंदर को गोलियां उठाने देगा और बंदर दुकान में पड़े अन्य पदार्थों को नहीं छेड़ेगा। जो दुकानदार बंदर से पंगा लेता वानर अपने साथियों के साथ उसकी दुकान के अंदर घुस कर वहाँ पड़े पदार्थों को ऐसे तहस नहस करते थे जैसे हनुमान ने रावण की लंका का किया था।

उन वानरों का एक सरदार था जिस से वानर तो क्या बस अड्डे पर काम करने वाले भी डरते थे। मोटा शरीर, भंयकर भयभीत करने वाली बड़ी बड़ी आँखें , चौड़ी टाँगें और लम्बी दुम थी। जब वह अपने बल का प्रदर्शन करने के लिए अपने दाँत पीसता था तो ऐसा लगता कि वह सब को कच्चा खा जाएगा यद्यपि लोग जानते थे कि वानर माँस नहीं खाता। यदि वह अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो जाए तो ऊँचाई में चार फुट से कम नहीं लगता था। संतोषजनक बात मगर यह थी कि वह स्वयं बस अड्डे पर कभी कभी आता था, यों कहो मास में एक दो बार शायद जनता को अवगत कराने के लिए कि मैं अभी जीवित हूँ मुझ से पंगा मत लेना। हरियाणा सरकार ने कई बार वानर सेना को भगाने का प्रयास किया मगर कुछ भी नहीं कर सकी। उसका कारण शायद यह भी था क्योंकि बहुदा हिन्दु वानरों को धार्मिक दृष्टि से देखते हैं सरकारी कर्मचारी उन्हें नष्ट करने से कतराते थे कि कहीं वानरों

के साथ लोग उनके पीछे ना पड़ जाएँ। वे कुछ समय के लिए लुप्त हो जाते थे मगर अवसर मिलते ही फिर आ जाते थे। भोजन की समस्या तो थी ही। कई बार बंदरियाँ अपने बच्चों को छाती से लगाए टोली के साथ आ जाती थीं। वानरों के सरदार को भी लोग हनुमान कहते थे। कुरूक्षेत्र निवासियों के लिए दो हनुमान थे - एक गजराज अर्थात बस ड्राईवार और दूसरा वानरों का सरदार अर्थात सेनापति। गजराज हनुमान बजरंग बली का भक्त होने के कारण वानर हनुमान का आदर करता था और लोगों को कहता था, " यह वानर उस वंश के प्राणी हैं जिन्होंने हनुमान के नेतृत्व में श्रीराम की सहायता करने की श्रद्धा से लंका पर आक्रमण कर के अपना अधिकार जमाया था। यदि वानर सेना ना होती तो सीता माता को पापी रावण के पंजे से छुड़ाना राम लक्ष्मण के लिए प्राया अंसभव होता।" परन्तु वह यह नहीं जानता था कि जिस वानर हनुमान के वह गुण गा रहा था वही वानर एक दिन उसका सर्वनाश कर देगा।

मंगलवार का दिन, प्रातः ग्यारह बजे, महीना मार्च का आंरभ - ना गरमी ना सरदी। उस दिन गजराज की काम से छुट्टी थी। वह जयश्री परिवहन के दफ़्तर में बैठा अपने साथियों से गपशप लड़ा रहा था कि इतने में एक छोटा सा वानर, शायद दो तीन मास का, दफ़्तर के अंदर घुस आया और कोषाध्यक्ष की खिड़की के आगे आकर खड़ा हो गया और अपना सिर खुजलाने लगा। गजराज ने कोषाध्यक्ष को हँस कर कहा, " यार, लगता है यह अपने पिता की ओर से वेतन लेने आया है।" उसने हँसते हुए उत्तर दिया, " हनुमानजी, यह अबोध है। इसका अँगूठा नहीं चलेगा।" गजराज ने शिशु बंदर को संबोधित करते हुए कहा, " बेटा, घर जाओ। पिता को भेज दो। हमारा कोषाध्यक्ष नियमों का

पालन किए बिना एक दमड़ी भी नहीं देता।'' गजराज के साथी ने कहा, '' बिचारा बड़ी आस लेकर आया था ख़ाली हाथ तो ना लौटाएँ इसे । कम से कम एक केला ही दे दें।'' गजराज ने कहा, '' बात तो ठीक है तुम्हारी।'' उसने अपने पासे खड़े कंडक्टर को कहा, '' जा भाई , रेड़ीवाले से केला ले आओ।'' उसके साथी ने कहा, '' यार एक से क्या होगा। कम से कम आधा दर्जन तो मगंवा, हम भी खा लेंगे।''

जब कंडक्टर हाल के बाहर आया तो उसने देखा कि सामने के वृक्ष पर बहुत से वानर बैठे थे जिन की दृष्टि दफ़्तर की ओर थी। इतने वानर उसने पहले एक साथ कभी नहीं देखे थे। वह घबरा गया और गजराज को आकर इसकी सूचना दी। वानरों ने शायद यह समझा कि दफ़्तर वालों ने शिशु वानर को बंदी बना लिया है मगर कोई भी उसे छुड़ाने के लिए हाल के अंदर आने के लिए तैयार नहीं था। वृक्ष पर बैठे वे योजना बना रहे थे कि शिशु को कैसे हाल से निकाला जाए। गजराज ने शिशु को हाल से भगाने की पूरी चेष्टा की मगर कभी वह इधर भागता तो कभी उधर। वह बाहर निकलने का नाम नहीं लेता था। शायद उसने प्रण किया हुआ था कि अपने पिता का वेतन लेकर ही जाएगा। गजराज यदि चाहता तो उसे डंडे से भगा सकता था परन्तु हनुमान का भक्त होने के कारण वह शिशु को कोई भी हानि नहीं पहुँचाना चाहता था। वह सोच ही रहा था कि क्या किया जाए कि एकाएक उसने वानर हनुमान को दफ़्तर की ओर आते हुए देखा। वह क्रोध से भरा हुआ था। उसकी आँखों से आग की चिंगारियां बरस रही थीं। गजराज समझ गया आज कुछ होने वाला है। उसने जितने व्यक्ति हाल में थे उन्हें कहा, '' तुम तुरंत मैनेजर और कोषाध्यक्ष के

कमरों में चले जाओ और अंदर से किवाड़ बंद कर लो। मैं इससे निपट लूँगा।''

इतने में शिशु बंदर अपने आप बाहर चला गया। उसे सुरक्षित देखकर वानर हनुमान को संतुष्ट होना चाहिए था मगर ऐसा लगता था वह मारने मरने पर तुल गया था। शायद उसे यह भ्रम हो गया कि दफ़तर वालों ने उसे जानकर बंदी बनाया था और उसे आते देखकर डर के मारे तुरंत छोड़ दिया था। वह वानरों का सरदार था। उनकी रक्षा करना उसका कर्तव्य भी था ओर धर्म भी, मगर उसमें विचार करने की शक्ति बहुत कम थी। उसके होते हुए शिशु वानर को बंदी बनाना उसके बल का अपमान था। उन लोगों ने उसके शासन को ललकारा था। एक बार आगे बढ़ कर पीछे हटना कायरता का चिंह था। ऐसा नहीं हो सकता था। उसने निश्चय कर लिया इधर या उधर।

हाल के अंदर आते ही वह गजराज पर झपटा। गजराज पहले से ही सतर्क था। उसने लोहे की कुर्सी ऊपर उठाकर वानर के सिर पर मारी। उसे चोट तो लगी मगर साधारण सी। वह दाँत पीसता हुआ और आँखें दिखाता हुआ एक बार फिर गजराज पर झपटा। उसने दूसरी कुर्सी उठा कर वानर पर फैंकी। ऐसे चार बार उन्होंने एक दूसरे पर वार किया। कभी वानर इस कोने में तो कभी उस कोने में। हाल के बंद कमरों के अंदर खड़े व्यक्ति खिड़कियां के शीशों से कुरूक्षेत्र का युद्ध देख रहे थे। युद्ध इतना प्रंचड था कि कोई भी भविष्यवाणी नहीं कर सकता था कि विजय किसकी होगी। जब पाँचवी अवधि आरंभ होने वाली थी तो वानर हनुमान छलाँग लगाकर पाँचवीं और अंतिम कुर्सी के निकट आ गया ताकि गजराज उसे उठा ना सके। चार कुर्सियां जिस से गजराज ने वार किया था वे टूट गई थीं। उसके लिए पाँचवी कुर्सी ऐसे थी जैसे

डूबते हुए को तिनके का सहारा। गजराज ने भी अपना पेंत्ररा बदला और कुर्सी को टेक से पकड़ने के स्थान पर उसकी अगली दो टाँगों को पकड़ा और टेक से वार किया। फिर क्या हुआ। गजराज भाग्यशाली था। टेक के नीचे का आधा भाग खुला था जो वानर के गले में फंस गया । जब वानर गले में पड़ी टेक से पीछा छुड़ाने का प्रयास कर रहा था तो स्थिति का पूरा लाभ उठाते हुए गजराज ने सोफ़ा के साथ पड़ी लकड़ी से बनी भारी कुर्सी को दोनो हाथों से ऊपर उठाया और अपने पूरे बल से हनुमान के सिर पर ऐसा जमा कर मारा कि वह लड़खड़ा गया और उसके सिर से रक्त बहने लगा। जिस लोहे की कुर्सी का टेक उसके गले में फंस गया था वह टूट गया। वह उससे तो मुक्त हो गया मगर इतनी बुरी तरह से आहत हुआ कि उसमें अब पुनः लड़ने का साहस नहीं था।

वानर हनुमान अपनी पराजय स्वीकार करते हुए लड़खड़ाते हुए और अपने घावों से बहते रक्त को देखकर दुःखी होते हुए , हाल से बाहर चला गया। उसकी सेना जो उसके विजयता होकर आने की प्रसन्नता में उसके स्वागत के लिए उत्सुक तथा उत्साहित खड़ी थी, अपने सम्राट की दुर्दशा देखकर उनके चेहरों का रंग उड़ गया। कहाँ वे किसी से डरते नहीं थे और अपनी मनमानी करते थे जैसे वे कुरूक्षेत्र बस अड्डे के शासक हों, अब अपने सिर नीचे किए , मुँह लटकाए, दुमों को दबाए और आँखों मे आँसू भरे चुपचाप खड़े थे जैसे उनकी साँस चलते चलते एकाएक रूक गई हो। उन्होंने अपने सम्राट को चारों ओर से घेर लिया और उसे साथ लेकर चुपके से चले गए। कई दिन तक वह फिर दिखाई नहीं दिए।

मानव हनुमान गजराज ने वानर पर विजय तो प्राप्त कर ली मगर उसकी अवस्था संतोषजनक नहीं थी। उसके शरीर पर

कई जगह छोटी बड़ी खरोंचें थीं। दो चार जगह से रक्त भी निकल रहा था। परन्तु वह बुरी तरह से थक गया था। वानर हनुमान के हाल से निकलते ही गजराज सोफ़ा पर जा कर यों गिरा जैसे भूकंप से कोई स्तंभ गिर जाए। इधर उधर जितने व्यक्ति खड़े थे सब भाग कर उसके निकट आ गए। तुरंत ऐम्ब्युलन्स को बुलाया गया और उसे अस्पताल में भरती करवा दिया। रात को बिस्तर पर अकेले पड़े जब उसे वानर का ध्यान आता वह कभी कुछ बड़बड़ाने लगता तो कभी वानर के समान गुर्राने लगता। एक बार वह बिस्तर से उठकर कमरे से बाहर गलियारे में आ गया और ज़ारे ज़ोर से चिल्लाने लगा जैसे कोई भंयकर स्वप्न देख कर चिल्लाने लगे। नर्स ने तुरंत डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर ने उसे शाँत करने वाली औषधि का इंजैकशन देकर सुला दिया। यद्यपि उसे कोई गहरी चोट तो नहीं लगी थी मगर डॉक्टर का कहना था उसे मर्माघात अवश्य पहुँचा था जिसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ा था। उसने यह भी कहा कि यह प्रभाव कब तक रहेगा वह कुछ कह नहीं सकता था।

पाँच दिन के पश्चात गजराज की अस्पताल से छुट्टी कर दी गई मगर डॉक्टर ने निर्देश दिया कि इसे घर बिस्तर पर कम से कम एक सप्ताह विश्राम करना चाहिए। घर में अकेला पड़े वह सोचता रहता यह सब क्या हो गया। कभी स्वप्न में भी उसे यह विचार नहीं आया था कि बजरंगबली का भक्त होते हुए भी एक दिन उसे हनुमान के वंशजों से युद्ध करना पड़ेगा। क्योकि वानर हनुमान घायल होकर चला गया था उसे यह भय भी नहीं सोने देता था कहीं वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए फिर ना आ जाए। उसमें शारीरिक बल तो अभी भी था परन्तु उसकी मानसिक शक्ति विफल हो गई थी। जब मनुष्य के बल को बुद्धि

का सहयोग ना हो तो केवल बल की वही अवस्था होती है जो बिना नाल वाले घोड़े की। भय ने उसके आत्मविश्वास की कमर तोड़ दी थी। मतिभ्रम ने उसे मृत्यु से पहले ही मार दिया था। उसे आशंका थी यदि वानर हनुमान फिर आ गया तो वह बच नहीं पाएगा। जब वह वानर को स्वप्न में देखता तो चिल्लाने लग जाता और ज़ोर ज़ोर से कहता, " महाराज, मुझे क्षमा कर दो। अपनी मूर्खता के कारण मैंने आपको दुः ख पहुँचाया। आप से युद्ध करने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। आप भली भाँती जानते हैं मैं तो हनुमान का भक्त हूँ। ऐसा घोर पाप मैंने क्यों किया और मुझसे यह कैसे हुआ मुझे आज तक समझ नहीं आया ।" गजराज का कंडक्टर उसकी देखभाल करता था परन्तु वह सारा दिन उसके पास नहीं रहता था।

एक शाम जब रात्री का काला परदा धरती पर धीरे धीरे गिरना आरंभ हुआ वह बिस्तर पर लेटे लेटे हिसाब लगा रहा था दो दिन के पश्चात वह फिर अपने काम पर चला जाएगा तो उसका मन लग जाएगा। जब उसे अपनी प्रेमिका बस का ध्यान आता वह चिंतित होता। गैराज में खड़े खड़े ना जाने उसकी क्या दशा होगी। वह जाकर उसे अपने हाथों से स्नान कराएगा ओर फिर कपड़े से साफ़ करके उसे पालिश से चमकाएगा। इतने में अंधेरा हो गया। बिस्तर से उठकर वह बिजली का बटन दबाने के लिए जाना चाहता था परन्तु अकस्मात उसे ऐसा अनुभव हुआ कि दरवाज़े में कोई खड़ा था। जब उसने मनन से देखने का प्रयास किया तो वह चौंक उठा। दरवाज़े में वानर हनुमान खड़ा था । वह उद्भ्रांत होकर भय से काँपने लगा। एक पल के लिए उसे ऐसा लगा वह कोई स्वप्न देख रहा था । अपनी आँखें मल कर जब उसने दुबारा देखा तो उसकी साँस तीव्र गति से चलने लगी। वानर के पीछे वह

लड़की खड़ी थी जिसका उसने कई वर्ष पूर्व बलात्कार किया था। यह दृश्य उसे ऐसा लगा जैसे वह रावण था और वानर हनुमान सीता माता के अपमान का प्रतिशोध लेने आया था। वह चिल्लाने लगा, " मुझे मत मारो। मैं तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ। मुझे क्षमा कर दो। मैं अपना पाप स्वीकार करता हूँ। अपने पापों का पश्चाताप करने के लिए मैं यह संसार त्याग दूँगा । जंगलों में जाकर घोर तपस्या करूँगा। मुझे मत मारो।" वह लगातार बोलता चला गया जैसे वाहन चला रहा हो। उसकी ऊँची आवाज़ सुनकर आस पास में रहनेवाले आ गए और उसका भयंकर आकार देखकर उसे तुरंत अस्पताल ले गए। विशेषज्ञ डॉक्टर ने उसकी पूर्णरूप से जाँच की और दो दिन परीक्षण में रखने के पश्चात यह सूचना दी कि वह पागल हो गया था और उसे पागलख़ाने में भरती करवाने का आदेश दिया।

वानर हनुमान और गजराज हनुमान के द्वंदयुद्ध को कुरुक्षेत्र बस अड्डा के निवासी धीरे धीरे भूल गए क्योंकि उस घटना के उपरांत ना ही किसी ने गजराज हनुमान को देखा और ना ही वानर हनुमान को।

* * * * * * * * * *

आँख मिचौली

सेठ करोड़ी मल गुप्ता के लड़के रामनाथ की बारात जब दिल्ली के चाँदनी चौक से गुज़री तो लोगों की आंखें चुंधिया गई । रामनाथ के विवाह से पूर्व करोड़ी मल अकसर अपने सगे संबंधियों , मित्रों,कई जानकारों अर्थात ग्राहकों को कहा करता था कि मेरे लड़के की बारात इतने धूमधाम से निकलेगी कि दिल्ली वाले दंग रह जायेंगे। जैसा वह कहा करता था वैसे ही हुआ । क्या दर्पपूर्ण दृष्य था । बहुत अधिकता से सजी घोड़ी पर उत्तम रेशम का कुर्ता पाजामा, जो दिल्ली के प्रसिद्ध दरज़ी मास्टर गुलाम नबी ने सीया था, पहने, सर पर सोने का मुकट रखे जिसके दोनों ओर मुख के आगे सुंगधित पुष्पों की लड़ियां लटक रही थीं दुलहा बड़े गर्व से बैठा था। ऐसा लगता था जैसे परियों के देश का कोई राजकुमार जा रहा हो। घोड़ी के आगे मिलिटरी बैंड बज रहा था जैसे कोई राजा युद्ध विजयी होकर अपनी राजधानी की ओर वापिस आ रहा हो। क्या आतिशबाज़ी थी मानो आकाश से तारे टूटकर धरती पर गिर रहे थे। स्त्रियाँ, पुरूष, बच्चे चमकीले कपड़े पहने आगे पीछे यों गर्व से चल रहे थे जैसे ऐसी बारात में वे पहले कभी सम्मिलित नहीं हुए हों। बारात बाँस बाजार जहां सेठजी लकड़ी का व्यापार करते थे से आरंभ होकर दरीबा, जहां लड़की वालों का घर था , तक जानी थी ।लड़की का पिता काँती लाल भी व्यापारी था। सोने चाँदी का धंधा था। दिल्ली का माना हुआ जौहरी था। दोनो

काईस्थ थे। किसी समय कोई दो सौ साल पूर्व काईस्थ अधिकतर मुनशीगिरी करते थे। समय बदलते देर नहीं लगती। अब वे लाखोंपति थे। करोड़ी मल जंगलों का ठेका लेकर लकड़ी कटवा कर थोक में बेचता था। बारात के पहुँचने पर उनका प्रतिष्ठ सहित सत्कार किया गया। बहुत तरह के भोजन परोसे गये और हर बाराती को उपहार में चाँदी का गिलास जिस पर दुलहा रामनाथ और दुल्हन सावित्री के नाम खोदे गये थे, दिया गया।

सावित्री अति सुन्दर थी। गोरा रंग, बड़ी आँखें, पुष्प समान खिला हुआ चेहरा और आकार माध्यमिक था। नाम यदि उसका सावित्री था परन्तु वह सति सावित्री नहीं थी। लाखों के दहेज के साथ अपनी गली में रहने वाला प्रेमी पृथ्वी का प्यार दिल में छिपा कर लाई थी जिसका थोड़ा बहुत ज्ञान उसके माता पिता को था परन्तु उन्होंने सोचा विवाह के पश्चात वह पृथ्वी को भूल जाएगी जो संभव नहीं लगता था क्योंकि दोनों प्रेमी और रामनाथ दिल्ली में एक दूसरे से अधिक दूर नहीं रहते थे। पृथ्वी राज का पिता मुलकराज भी एक जौहरी था। मगर काँती लाल की तुलना में वह आटे में नमक के बराबर था। वह हिन्दुस्तान का बटवारा हो जाने पर रावलपिंडी से आया था। कई साल इधर उधर हाथ पाँव मारने के बाद उसने दरीबे में एक छोटी सी दुकान ली जहाँ वह फिर से सोने चाँदी के आभूषण बनाने लगा। यह सत्य है कि थोड़े ही समय में उसका काम चल पड़ा मगर दिल्ली नगर में वह साख नहीं बन पाई जो काँती लाल की थी। उसके तीन लड़के और दो लड़कियाँ थीं। पृथ्वी राज उसका सब से छोटा लड़का था जिसका विवाह अभी नहीं हुआ था। मुलक राज के कान में भनक तो पड़ी थी कि पृथ्वी और सावित्री का आपिस में प्यार था मगर उस में

इतना साहस नहीं था कि वह कॉंती लाल से अपने बेटे के लिए सावित्री का हाथ मॉंगे। कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली। एक समस्या और भी थी। वह पंजाबी था और कॉंती लाल बनिया था । जातपात का भेद काफ़ी महत्व रखता था ।उसने भी यही सोचा कि सावित्री के विवाह के बाद पृथ्वी उसे भूल जायेगा।

पृथ्वी और सावित्री का एक दूसरे से कैसे प्रेम हुआ यह एक विचित्र घटना थी। एक दोपहर पृथ्वी और सावित्री एक ही गली से जा रहे थे मगर उनकी दिशा अभिमुख थी। गली कुछ तंग थी। जब वे गली के मोड़ के पास पहुँचे तो एक मकान के दूसरे तल से पानी पाईप से नीचे आ रहा था। एकाएक पाईप फट गया और पानी उछलकर चार पग की दूरी पर सावित्री के सामने गिरा। वह उछल पड़ी और घबराहट में उसका पैर फिसल गया। वह गिरने वाली थी कि दूसरी ओर से आते हुए पृथ्वी ने उसे पकड़ लिया। फिर भी वह पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ी। पृथ्वी ने उसे बड़ी कठिनाई से संभाला ।जब वह चेतना में आई उसने आँख उठाकर ऊपर देखा। पृथ्वी की आँखें तो पहले ही उस पर थीं। आँखें दो से चार हुई, फिर टकराई, चुंधियाई और अंत में आँखें आँखों में गड़ गई ।वे इस स्थिति में अधिक समय तक नहीं रह सकते थे क्योंकि आते जाते लोग वहाँ रूक गये थे। सावित्री ने आँखें नीची कर लीं। आँखों को फिर ऊपर ना उठाते हुए वह शीघ्रता से चली गई।

पृथ्वी रात को सावित्री के स्वप्न देखता रहा और सावित्री पृथ्वी के। दोनों अब एक दूसरे की आँखो में बस चुके थे। जब प्यार हो जाये और प्यार दोनों ओर से एक समान हो तो मिलने का मार्ग निकल ही आता है। दोनों ने यही सोचा कि फिर दोपहर को उसी समय, उसी गली से जाना चाहिए। दोनों का सोचना ठीक था। वे

फिर मिले और इस प्रकार कहीं ना कहीं एक दूसरे को समय देकर और मिलने का स्थान निश्चित कर के मिलने लगे। किसी ने जा कर काँती लाल के कानों में यह बात डाल दी। उसने सोचा इस रोग का उपाय एक ही था कि सावित्री का विवाह कर दिया जाये। क्योंकि सावित्री का विवाह पृथ्वी से नहीं हो सकता था या यों कहिए उनके भाग्य में संगम नहीं लिखा था, उसका विवाह रामनाथ से हो गया।

कुछ दिनों के पश्चात जब सावित्री अपने माँ बाप के घर आई वह पृथ्वी से मिलने के लिए बहुत उत्तेजित थी। पृथ्वी अब अपने बाप के साथ दुकान पर बैठता था। अवसर मिलते ही सावित्री घर से निकल कर पृथ्वी की दुकान की ओर गई। उसने दूर से देखा पृथ्वी का पिता दुकान पर नहीं था मगर वह दो ग्राहकों से बातचीत कर रहा था। सावित्री कुछ कदम आगे बढ़ी फिर पीछे गई और पृथ्वी की दुकान के सामने कोई पाँच फुट की दूरी पर पीठ उसकी ओर करके खड़ी हो गई जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। पृथ्वी की दृष्टी योंही उसकी पीठ पर पड़ी। उसने सावित्री को झट से पहचान लिया। वह दुकान से उठकर उसके थोड़े पीछे रूक गया। सावित्री को कल्पना हुई कोई उसके निकट खड़ा था। उसने मुड़ कर पृथ्वी को देखा। पृथ्वी ने उसे दुकान के अंदर बुला लिया। ग्राहकों से शीघ्र निपट कर वह सावित्री से बात कर रहा था कि मुलकराज आ गया। उसे देखते ही सावित्री झट से उठ कर चली गई। पिता ने फिर अपने बेटे को समझाया, " अब उसका पीछा छोड़ दो। यदि काँती लाल या करोड़ीमल को पता चल गया तो हम कहीं के नहीं रहेगें। तुम जानते हो दोनों की पुरानी दिल्ली में कितनी साख है। कहाँ कहाँ तक उनकी पहुँच है।

अगर बात बढ़ गई, ना तुम्हारी कोई सुनेगा और ना मेरी । हम बरबाद हो जाएँगे सदा के लिए।'' पृथ्वी अपने पिता की बात सुनता रहा मगर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह प्रेम में विवश था।

सावित्री और पृथ्वी का मिलना बंद नहीं हुआ भले कम क्यों ना हो गया हो। सावित्री एक विवाहित स्त्री थी । बड़े घर की बेटी थी और उतने ही बड़े घर की बहू थी। उसका घर से आए दिन बिना बताए चले जाना करोड़ी मल और रामनाथ की आँखों में खटकने लगा। धीरे धीरे उनको मालूम हुआ कि सावित्री चुपके चुपके पृथ्वी से मिलने जाती थी। पृथ्वी निसंदेह उनकी आँख का काँटा बना गया । उन्होंने काँती लाल से परामर्श किया। पिता ने अपनी पुत्री को समझाया । वह कुछ दिन तो चुप रही परनतु पृथ्वी से मिले बिना वह नहीं रह सकती थी। इतने में वह गर्भवती हो गई। दोनों परिवारों को यह चिंता खाए जा रही थी कि यदि सावित्री का बच्चा हो गया, सारी दिल्ली उनपर थूकेगी। वे किसी को मुख दिखाने योग्य नहीं रह जायेंगें। रामनाथ की तो आँखें लालपीली हो गई। बाप बेटे ने निश्चय कर लिया कि इस प्रेमरोग का कोई ना कोई उपाय तो ढूँढना पड़ेगा और उन्होंने शीघ्र इसका उपाय ढूँढ लिया।

कुछ दिन के पश्चात समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर पृथ्वी की हत्या का समचार छपा। हत्यारों ने पिछली रात के कोई तीन बजे मुलकराज के घर की खिड़की तोड़ कर अंदर गये और गोली से पृथ्वी को मार दिया। जब उसके माता पिता ने उसे बचाने का प्रयास किया तो हत्यारों ने उन्हें गोली तो नहीं मारी मगर लोहे की सलाख से घायल कर दिया और भाग गए। समाचार छपने तक वे

नहीं पकड़े गये थे। कई दिन बीत जाने पर भी नहीं पकड़े गये । इस दिलचीर देने वाली दुर्घटना का समाचार जब सावित्री को मिला वह मूच्छित हो गई। उसे तुरंत अस्पताल ले जाया गया। वहाँ जाँच पड़ताल करने से ज्ञात हुआ कि मर्माघात के कारण उसका गर्भ गिर गया था और वह अब फिर कभी माँ नहीं बन सकेगी। सावित्री कुछ समय तक चुप रही मगर उसके अंदर प्रेम की आग अभी भी जल रही थी। वह आग प्रेम से परिवर्तित होकर प्रतिशोध की आग बन गई । वह पहिले ही रामनाथ से कोई शारीरिक संबंध नहीं रखना चाहती थी मगर पत्नी होने के नाते वह सदा इंकार भी नहीं कर सकती थी। पृथ्वी की हत्या के बाद उसने रामनाथ के साथ सोने से बिल्कुल इंकार कर दिया। रामनाथ के लिए यह एक चुनौती थी। वह कभी उसे तंग करता, कभी गालियाँ देता और कभी उस पर हाथ भी उठाता। यदि वह कुछ अपने माता पिता से कहती वे यही उत्तर देते, "तेरा घर वहीं है जहाँ तेरा पति है। हम कुछ नहीं कर सकते।" फिर भी वह पीछे नहीं हटी । उसने महिला सुरक्षा समिति से सम्पर्क किया। समिति के कार्यकर्ताओं ने करोड़ी मल के दबाव में आकर उसको किसी प्रकार की सहायता देने से इंकार कर दिया। फिर उसने एक वकील से परामर्श किया। उसने भी करोड़ी मल के दबाव मे आकर ना कर दी। अब वह उठ चुकी थी। उसका चुप रह के बैठना संभव नहीं था। उसने निश्चय कर लिया वह कुछ न कुछ कर के ही रहेगी।

सावित्री की एक पुरानी सहेली थी। उसने मंत्रणा दिया कि पुलिस से मिलो । अगले दिन वह थाने गई और वहाँ उसकी भेंट इंस्पैक्टर प्रेमसुरूप से हुई। जिस एकाग्रचित से वह सावित्री को देख रहा था वह समझ गई यदि वह उसे थोड़ी सी ढ़ील दे दे तो वह

उस पर अपनी जान छिड़कने के लिए तैयार हो जाएगा। मुस्कान तथा आँखों की भाषा से सावित्री ने प्रेमसुरूप का मन जीत लिया। उसने उसी समय रिर्पोट तैयार की, उस पर सावित्री के हस्ताक्षर करवा कर कारवाई करने का वचन दिया। मगर उसने कच्ची गोलियाँ नहीं खाई थीं। रिर्पोट रेजिस्टर में अंकित नहीं की। दो चार दिन गुज़रने पर उसने सावित्री को टेलीफ़ोन कर के पूछा कि क्या वह उसके घर आ सकता था क्योंकि उसे कुछ बातें स्पष्ट करवानी थीं। सावित्री की सास प्रतिदिन पाँच से सात बजे कीर्तन के लिए मंदिर जाती थी। उसने प्रेमसुरूप को उसी समय के बीच में आने के लिए कहा । ऐसे ही कुछ मुलाकातों में वे एक दूसरे कि निकट आ गए और सावित्री ने अपने हृदय के पट खोलने के साथ साथ धीरे धीरे अपने शरीर के पट भी खोल दिये और जब उसने देखा कि प्रेमसुरूप उसकी पकड़ में आ गया था उसने कहा, "तुम्हारा यहाँ आए दिन आना ठीक नहीं । जिस दिन मेरे पति को यह जानकारी मिल गई तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा मगर मैं मारी जाऊँगी। वह हमारे मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।"

प्रेमसुरूप ने पूछा, "तुम क्या चाहती हो?"

सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया । प्रेमसुरूप ने फिर कहा, "मैं तुम्हारा संपर्क बादशाह नाम के व्यक्ति से करवा दूँगा। तुम जो चाहो और जैसे चाहो, उसे स्पष्ट शब्दों में बता देना। तुम्हारा काम हो जाएगा और तुम्हारे ऊपर कोई आँच नहीं आएगी।"

" आप के कहने का अर्थ है साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी।" सावित्री ने हल्की मुस्कान के साथ कहा।

"तुम जो अर्थ निकालना चाहो यह तुम्हारी इच्छा है । मेरी ओर से तुम्हें मेरा सहयोग मिलेगा। कोई तुम्हारा बाल बांका तक भी नहीं

कर सकेगा।" प्रेमसुरूप ने विश्वास से कहा, " यह मेरा वचन रहा।"

कुछ दिनों के पश्चात एक बार फिर समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर रामनाथ कि हत्या का समाचार छपा। करोड़ी मल के हाथों के तोते उड़ गये । एक ही संतान और उसकी मृत्यु इतनी दुर्दशा से सारी दिल्ली वाले चकित थे। करोड़ी मल ने प्रण किया कि वह हत्यारों का पता लगवा कर रहेगा और उन्हें मृत्यु दंड दिलवाएगा । उसने उन की खोज करवाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। पुलिस के मुख्य अधिकारियों और गृह मंत्रालय के उच्च अधिकारियों से थाने वालों पर दबाव डलवाया मगर हत्यारों का कोई चिंह्न नहीं मिला। करोड़ी मल के लिए यह लज्जा की बात थी। इतना बड़ा सेठ, इतना धनवान और इतना पहुँचा हुआ व्यक्ति वह जाँच नहीं करवा सका कि उसके बेटे को किसने कत्ल किया था। इस शोक से वह एकदिन चल बसा। अब केवल सावित्री और उसकी सास ही सारी सम्पति की मालिक थीं। सावित्री और प्रेमसुरूप के मार्ग में रूकावट नाम मात्र ही रह गई थी क्योंकि उसकी सास की रूचि भजन कीर्तन में थी। वैसे भी वह व्यहवार तथा घर के प्रसंग में हस्तक्षेप कम करती थी। सावित्री का संबंध प्रेमसुरूप से प्रेम का नहीं था। वह तो अपना उल्लू सीधा करना चाहती थी। धीरे धीरे उसका मन प्रेमसुरूप से ऊब गया मगर वह उसे दूध से मक्खी के समान निकाल कर नहीं फैंक सकती थी। अभी वह जवान थी। उसने रामनाथ के चचेरे भाई साधुराम पर डोरे डालने शुरू कर दिए और अंत में वह उसे अपने जाल में फँसाने में सफल हो गई।

नैतिक दृष्टिकोण से सावित्री ने जो कुछ अब तक किया वह उचित नहीं था। पृथ्वीराज चाहे उसके जीवन से कब का जा चुका था मगर वह उसे दिल से नहीं निकाल सकी। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती बिगड़ती चली गई कि शायद वह स्वयं भी नहीं जानती थी वह क्या कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था पृथ्वी को छोड़ कर उसे सब पुरूषों से एक प्रकार की घृणा सी हो गई थी या वह अभी भी पृथ्वी के प्रेम में अंधी थी।

साधुराम शायद अपनी चाल चल रहा था। उसका पिता अभी भी मुनशीगिरी करता था और साधु स्वयं परॉंठे वाली गली में सुनार का काम करता था। छोटी सी दुकान थी। उसने सोचा सावित्री को फंसाकर वह मालामाल हो जाएगा। गर्मियों का मौसम था । दोनों ने कुछ दिन शिमला में इकट्ठे बीताने की योजना बनाई और योजना अनुसार वे वहाँ पहुँच गए। अब क्या हुआ। विदेश से आया हुआ एक छोटा सा प्रतिनिधी मंडल जो शिमला जा रहा था उसकी सुरक्षा के लिए प्रेमसुरूप को नियुक्त किया गया। शिमला में उसने सावित्री को साधुराम के साथ हाथ मे हाथ डाल कर मालरोड पर चलते हुए देखा। क्योंकि उस समय वह ड्यूटी पर था वह चुप रहा। दिल्ली वापिस आकर वह सीधा सावित्रि के घर गया। वह अभी शिमला से लौट कर नहीं आई थी। वह उसके आने की गम्भीरता से प्रतीक्षा करता रहा। उसके लौटते ही प्रेमसुरूप ने उसको ऐसे आँखें दिखाई जैसे वह उसकी पत्नी हो। उसने सावित्री पर आँखें फेरने का आरोप लगाया। पहले तो डर से सावित्री की आँखे भर गई फिर उसने अपने पर नियंत्रण रखते हुए प्रेमसुरूप को आँख दिखाई मगर प्रेमसुरूप की आँख खुल चुकी थीं। जब सावित्री ने उसे कुछ कठोर शब्दों में कहा, "मैं ना तुम्हारी

पत्नी हूँ ना ही दासी। मैं स्वतंत्र हूँ। मैं जो चाहूँ करूँ। तुम्हें मुझे आँख दिखाने का कोई अधिकार नहीं है।'' तो प्रेमसुरूप ने उसे याद दिलाया ''तुमने वचन दिया था तुम मुझसे धोखा नहीं करोगी।'' सावित्री ने आँखे बचाते हुए उत्तर दिया,'' मुझे याद नहीं मैंने ऐसा कोई वचन तुम्हें कभी दिया हो।'' प्रेमसुरूप और कोई प्रश्न करे या कुछ कहे वहाँ से उसी समय लौट आया।

थाने पहुँचते ही उसने बादशाह को बुलवाया । जिन दो व्यक्तियों ने रामनाथ का वध किया था उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी पाप-स्वीकरण पर उनके हस्ताक्षर करवाए गए । उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने ही रामनाथ की हत्या की थी मगर यह हत्या सावित्री के अनुरोध पर की गई जिसके प्रतिदान में उन्होंने दो लाख रूपये की राशि स्वीकार की थी। जब उन्होनें प्रेमसुरूप से पुछा कि उनपर कोई आँच तो नहीं आयेगी उसने उन्हें विश्वास दिया कि कुछ नहीं होगा। यह कारवाई बुद्धवार को हुई । शुक्रवार शाम को पाँच बजे जब अदालत बंद हो जाती है और प्रतिभूति नहीं हो सकती प्रेमसुरूप सावित्री की गिरफ्तारी के वारंट लेकर उसके घर पहुँच गया और उसे गिरफ्तार कर लिया। तीन रात तथा दो दिन वह जेल में रही । उसने प्रेम सुरूप से मिलने के कई प्रयास किए मगर उसने मिलने से इंकार कर दिया।

सोमवार को जब अदालत खुली तो सावित्री की प्रतिभूति तो हो गई मगर वह दंड से बच नहीं सकी। सारे प्रमाण उसके विरूद्ध जाते थे। कई मास तक मुकदमा चलता रहा। अंत मे न्यायधीश ने हत्या करने वालों को आजीवन कारावास का दंड दिया ओर सावित्री को सात साल का कठोर दंड दिया । यदि सावित्री के पिता कॉंतीलाल ने गृहमंत्री से सिफारिश ना लगवाई

होती तो सावित्री को भी शायद आजीवन कारावास का दंड मिलता। कई मास तक इस विषय पर दिल्ली के बाजरों और गलियों और दिल्ली निवासियों के घरों मे और समाचार पत्रों में चर्चा होती रही। मगर समय बीतने के साथ वे इसे भूल गए जैसे पृथ्वी राज की हत्या को भूल गए थे।

* * * * * * * *

कन्हैया

परिवार में ना कोई ऐसी घटना हुई थी ओर ना ही कोई झगड़ा जिसके कारण रामदयाल का मन अशाँत होता मगर ना जाने उसने अपने पुत्र कृष्ण कुमार के चौथे जन्म दिन से पूर्व अपनी पत्नी माला को कहा , " मैं सोच रहा हूँ इस बार कृष्ण के जन्मदिन की पार्टी नहीं करेंगे। बाहर चले जायेगें। पहिले किसी रेस्टॅरॉं पर खाना खाएँगे और बाजार से उसे एक बढ़िया सी ड्रेस और कुछ खिलौने ले देंगे।" माला ने झट से कहा, " ऐसा नहीं हो सकता। मैंने तो अपनी बहिन को कई दिनों से कह रखा है हम कृष्ण का जन्मदिन अवश्य मनाएँगे और उसे भी बुलाएँगे। बहिन के अतिरिक्त मैंने अपने दफ़तर की सहेली प्रेमा से भी कह रखा है।" रामदयाल ने उत्तर दिया, " जैसे तुम्हारी इच्छा। छोटी सी पार्टी घर पर ही कर लेंगे।"

गरमी का मौसम था ।जून का महिना ।बाकी तो सब ठीक था मगर बिजली का बार बार जाना कुछ चिंताजनक था। वैसे तो घर में इन्वर्टर था मगर उससे सारे घर की बत्तियाँ, पंखे और दो ऐ. सी. नहीं चल सकते थे। क्योंकि कुछ और प्रबंध नहीं हो सकता था सीमित अतिथियों को निमंत्रण दिया गया। यों समझिए अपने घरवालों को मिला कर कुछ बाइस लोग थे जिन में नौ बच्चे थे। खाने पीने का प्रबन्ध अच्छा था। रामदयाल और माला दोनो बैंक में काम करते थे। रामदयाल मैनेजर की पदवी पर था। माला उससे एक स्थान नीचे थी। मगर दोनो पृथक पृथक बैंकों में काम करते थे। क्योंकि रामदयाल ऋण विभाग का नायक था थोड़ी बहुत

ऊपर की भी आमदनी थी। दिवाली और अन्य त्योहारों पर उपहार भी घर पहुँच जाते थे। अच्छी गुज़र थी।

रामदयाल के बचपन का एक दोस्त भूपिंदर सिंघ अपनी पत्नी के साथ आया। पहिले उन्होंने कृष्ण को डिब्बे में बंद एक उपहार दिया फिर उसको आर्शीवाद दिया। सिंघ की पत्नी ने कहा " कितना प्यारा बच्चा है। वाहेगुरू इसकी रक्षा करें।" वे दोनो बैठक में अन्य उपस्थित जनों के साथ बैठ गए। रामदयाल भी भूपिंदर के साथ बैठ गया। भूपिंदर ने मुस्कराते हुए उसे धीरेसे कहा, " यार तेरा मुंडा हज़ारॉं विच इक है। कन्हैया है कन्हैया। जद जवान होएगा तू वेखीं कुड़ियाँ ऐदे अगे पिछे दौड़न गियां जिस तरह कॉलिज विच तेरे पिछे दौड़ दियां सन।" कृष्ण वास्तव में बहुत रूपवान था। कन्हैया के समान गोल माथा, गहरी आँखें और सांवला रंग था। रामदयाल उसकी बात सुनकर हँसा और कहने लगा, " ओ यार मेरे, आखिर बेटा किसका है।" अभी उनकी बातचीत चल ही रही थी कि जिस कमरे में कृष्ण और अन्य बच्चे खेल रहे थे वहाँ से ज़ोर ज़ोर से चीखें आने लगीं। सब भाग कर गए। देखा की कृष्ण के कपड़ों को आग लगी हुई थी। हुआ क्या शॉर्ट सर्किट के कारण खिड़की के परदे को आग लग गई थी। दुर्भाग्य से कृष्ण खिड़की के पास खड़ा था। उसने ऐसे कपड़े पहन रखे थे जिन में पालिएस्टर और नाइलन की मात्रा अधिक थी जिसके कारण वह कपड़े जल्दी आग की लपट में आ गए। सब ने मिल कर पानी से आग बुझाई मगर कृष्ण आग की लपट में इतना आ गया था उसे तुरंत अस्पताल ले जाना पड़ा। कई दिनों के बाद जब उसकी छुट्टी हुई तो माता पिता को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ कि उसकी बाएँ गाल और कान का कुछ भाग और सिर के

कुछ बाल बुरी तरह से जल गये थे। उन्होंने सोचा जब यह बड़ा हो जाएगा इकसी कॉस्मटिक सर्जरी करवा देगें।

लड़के के भाग्य अच्छे नहीं थे। छे मास के पश्चात जब वह एक दिन कोठे की छत पर पंतग उड़ा रहा था पंतग उसके हाथ से छूट गई । पंतग को पकड़ने के चक्कर में वह भागा और छत से नीचे गिर पड़ा जिससे सिर और मुँह पर काफ़ी चोटें आई। कई टॉके भी लगे जिन के कारण उसका चेहरा ओर भी बिगड़ गया । कोई क्या कर सकता था और कोई यह भी नहीं कह सकता था कि उसके भाग्य में आगे क्या लिखा है। जब वह छे वर्ष का था उसे क्रिकेट खेलने का बहुत शौक था। गली के अन्य बच्चे घर के पास एक ख़ाली मैदान में गरमी हो या सरदी क्रिकेट खेलते थे। वह भी उनके साथ मिलकर खेलता था। एक दिन बच्चों ने मैच खेलने के लिए दो टीमें बनाईं। जब उसकी टीम फीलि्ड़ग कर रही थी टीम के कप्तान ने उसे सिल्ली मिड आन के स्थान पर इतने निकट खड़ा कर दिया कि बल्लेबाज़ से हाथ मिला सकता था। जब गेंदबाज़ ने गेंद फेंकी वह गेंद आफ़ स्टम्प के बाहर जा रही थी। बल्लेबाज़ ने रन बनाने की चेष्टा से बिन बाल पर पुरी दृष्टि रखे बले को ज़ोर से हवा में घुमाया। बल्ला बाल पर तो क्या लगना था सीधा कृष्ण को जा लगा । वह उसी समय गिर पड़ा और उसके सिर से रक्त बहने लगा। एक बार फिर वह अस्पताल में भरती हुआ। जहाँ उसका बचा खुचा चेहरा तो बिगड़ ही गया साथ में वह अपनी मानसिक शक्ति भी खो बैठा।

स्कूल में जब वह पढ़ने लिखने योग्य ना रहा, वह बैठे बैठे दूसरे बच्चों को छेड़ता। कभी किसी को टाँग मारता, कभी धक्का देता तो कभी कभी गंदी गालियाँ निकालता। स्कूलवालों ने तंग आकर उसे स्कूल से निकाल दिया। अब वह सारा दिन घर पर

रहता कोई ना कोई शरारत करता रहता। कभी बड़ी बहिन शुशमा से झगड़ता तो कभी छोटे भाई अलोक को मारता । माता पिता के लिए अब वह एक समस्या बन गया था। वे उसे बहुत समझाते। कभी वह मान जाता तो कभी नहीं। मगर जब वह सोलह साल का हो गया वह अधिक समय चुप रहता जैसे वह अपने आप में खो गया हो। उसका इस प्रकार चुप रहना तो ठीक था क्योंकि वह अब अपने भाई बहिन को नहीं सताता था मगर उसकी चुप्पी चिंता का कारण भी बन गई।

वह देखने में इतना कुरूप था कि गली के लड़के उसके साथ खेलना तो एक ओर रहा उससे बात करने से भी डरते थे। वास्तव में उसका शरीर काफ़ी भारी था और उसके हाथ पाँव काफ़ी शक्तिशाली थे। एक मन का बोझ वह एक हाथ से उठा लेता था। एक बार उसने एक सब्जी बेचने वाले को उसके गाल पर इतने ज़ोर से थप्पड़ मारा कि उसकी गाल से रक्त निकल आया। इसमें कोई संदेह नहीं कि बच्चे तो बच्चे गली के बड़े भी उससे दूर रहना पंसद करते थे।

कुछ दिनों से कृष्ण दोपहर को घर से बाहर निकल जाता और घंटे दो घंटे के बाद लौटता। उसके घर से कुछ दूर लड़कियों का स्कूल था। स्कूल के बंद होने पर वह गेट से कुछ दूर खड़ा हो जाता और लड़कियों को ताकता रहता। कुछ लड़कियाँ बस से घर जातीं तो कइयों के घर से कोई उन्हें लेने आ जाता । जिन लड़कियों के घर स्कूल से निकट थे वे पैदल चली जातीं। उसने दो लड़कियों का पीछा करना शुरू कर दिया और उसने तुरंत पता लगा लिया कि वे कहाँ रहती थीं और किस मार्ग से जाती थीं। एक दिन दोनो में से एक नहीं आई। कृष्ण उसके पीछे पीछे चलता रहा। जब वह लड़की पार्क में से होकर जा रही थी उसने उसे पीछे

से पकड़ लिया और उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया ताकि वह शोर ना मचा सके ।फिर वह उसे घसीट कर एक झाड़ी के पीछे ले गया। क्योंकि गरमी का मौसम था और दोपहर के समय पार्क में एक दो व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई और नहीं था। झाड़ी के पीछे ले जाकर उसने लड़की से छेड़ छाड़ की और इससे पूर्व वह कोई और कदम उठाता एक आदमी के पाँव की आहट सुनकर उसने लड़की को छोड़ दिया और भाग गया। घर जा कर लड़की ने अपने पिता को उस घटना का उल्लेख दिया। क्योंकि कृष्ण ने उसे पीछे से पकड़ा था और वह भयभीत हो गई थी वह उसका विवरण देने में असमर्थ थी। हाँ जब वह भाग रहा था लड़की ने उसकी पीठ देखी थी मगर केवल पीठ से पहचान करना सरल नहीं था। कुछ दिन कृष्ण ने स्कूल के बाहर खड़ा होना बंद कर दिया।

इसी आवर्त्तन में शुशमा की शादी हो गई ।विवाह के दो मास बाद वह अपने मैके कुछ समय रहने के लिए आई। एक दिन जब वह नहा कर कमरे मे कपड़े बदलने के लिए आई तो वह दरवाज़ा बंद करना भूल गई या उसने उसे बंद करना उचित नहीं समझा। कृष्ण ने उसे देख लिया था। जब वह कपड़े बदल रही थी वह कमरे के अंदर चला गया और शुशमा को धक्का देकर पंलग पर डाल दिया। उसे तुरंत नंगा कर दिया और जब वह उसके ऊपर चढ़ने लगा तो शुशमा ने चिला कर कहा, '' भैया, यह क्या कर रहे हो तुम? पागल तो नहीं हो गए। मैं तुम्हारी सगी बहिन हूँ।'' कृष्ण ने सोचा कहीं वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने ना लग जाए उसने उसके मुँह पर आपना हाथ रख दिया। शुशमा ने अपने आप को छुड़ाने का बहुत प्रयास किया मगर वह असफल रही। जब कृष्ण ने देखा कि उसने संघर्श करना छोड़ दिया है उसे कुछ भ्रम हुआ। उसने अपना हाथ उसके मुँह से हटा लिया। साँस रूक जाने के

कारण वह मर चुकी थी। उसने जल्दी से उसके नंगे बदन को ढका ओर बाहर निकल आया। उसका छोटा भाई आँगन में खड़ा था। वह अभी अभी बाहर से आया था मगर उसने सारी दुर्घटना खिड़की से देख ली थी। कृष्ण समझ गया कि अलोक ने सब कुछ देख लिया था। उसने अपने भाई को धमकी देते हुए कहा, " यदि तुमने यह बात माता पिता को बताई तो मैं तुम्हें जान से मार दूँगा।" अपने भाई के पहलवान जैसे सुदृढ़ शरीर को देख कर वह घबरा गया। डर के मारे उसने किसी को कुछ नहीं बताया। माता पिता तथा अन्य रिश्तेदारों ने यह अनुमान लगाया कि शुशमा की मृत्यु दिल का दौरा पड़ने से हुई थी।

दो वर्ष बीत गए। जब घर में अलोक के विवाह की बात चली तो उसने इंकार कर दिया। पूछने पर कुछ नहीं बताया। फिर भी माँ बाप ने उसकी शादी कर दी। उसने अपनी पत्नी राधा को कहा, "मेरे भाई से सतर्क रहना। वह कभी कभी हिंसक हो जाता है।" वह अभी भी अपने भाई से डरता था। उसने राधा को और कुछ नहीं बताया। एक दिन जब राधा घर में अकेली थी कृष्ण ने उसे पकड़ लिया और जब वह शोर मचाने लगी तो कृष्ण ने उसे धौंस दी, " अगर तुमने शोर मचाया तो मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा। " वह डर गई। कृष्ण ने अपनी भाभी का बलात्कार किया। पहले तो वह बहुत घबराई मगर उसने कृष्ण के खड़े हुए लिंग को देखा तो चकित रह गई। उसे ऐसा लगाा कि उसकी योनी बिलकुल भर गई थी। वह शकल में कितना कुरूप था मगर अंदर इतना सुन्दर हो सकता था शायद किसी को यह विचार नहीं आया। कृष्ण के लिए अब रास्ता खुल गया था। उसने लड़कियों के स्कूल के सामने जाकर खड़ा होना और लड़कियों पर आवाजें कसना बंद कर दिया। यहाँ तक के उसके स्वभाव में अचानक परिवर्तन आ

गया। अब वह ना किसी से झगड़ा करता था ना ही किसी को तंग करता था या मारता था। सब असमंजस में पड़ गए कि यह परिवर्तन उस में कैसेआया।

एक दोपहर कृष्ण किसी दुकान पर चाय पी रहा था। संयोग से नीला नाम की लड़की जिसके साथ उसने झाड़ी के पीछे जाकर छेड़ छाड़ की थी वह अपने पिता के साथ ऊधर से जा रही थी। उसकी दृष्टि अक्समात कृष्ण पर पड़ी जिसकी पीठ उसकी ओर थी। उसने झट उसे पहचान लिया और अपने पिता को धीरे से बताया कि यह आदमी वही था। उसके पिता ने मोबाइल फ़ोन से झट पुलिस को बुलाया। दस मिंट के अंदर पुलिस की जीप में सवार दो पुलिसवाले वहाँ पहुँच गए और कृष्ण को पकड़ लिया। वे उसे तुरंत थाने ले गए। पहिले तो वह नहीं माना कि उसने लड़की से छेड़छाड़ की थी। उसने तो उलटा यह कहा कि इस लड़की को वह जानता तक भी नहीं था। जब पुलिसवालों ने उसे डराया धमकाया ओर कुछ मारपीट भी की तो उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया। मगर न्यायालय में उसके वकील ने यह उक्ति दी कि क्योंकि कृष्ण मनोवृतिक विकलांग था उसने जान बूझ कर लड़की के साथ अनुचित व्यवहार नहीं किया था। न्यायाधीश ने वकील की उक्ति स्वीकार कर ली और कृष्ण को छोड़ दिया। फिर भी वह छे मास जेल में रहा क्योंकि पहले जज ने उसकी प्रतिभूति का प्रार्थना पत्र निरस्त कर दिया था।

इस छे मास मे राधा अति व्याकुल थी। जिस शाम वह जेल से छूट कर आया वह अति प्रसन्न थी। दोनों ने बिना सोचे समझे रात को मिलने की चेष्टा की। जब राधा अपने कमरे से उठकर जाने लगी तो अलोक की नींद खुल गई। क्योंकि कमरे में अंधेरा था और राधा कृष्ण से मिलने के लिए तड़प रही थी उसने

अलोक को जागते हुए नहीं देखा। मगर अलोक को संदेह हुआ। वह धीरे से उठकर उसके पीछे गया। जब उसने राधा को कृष्ण के कमरे में जाता हुआ देखा वह समझ गया। क्योंकि उसने कृष्ण को पहले शुशमा से छेड़छाड़ करते हुए और उसका बलात्कार करने का प्रयास करते हुए देखा था उसे कोई अंचभा नहीं हुआ। वह अब भी अपने भाई से डरता था। मगर समस्या बड़ी गम्भीर थी। वह सोच मे पड़ गया कि क्या किया जाए। वह अपने भाई की हत्या नहीं करना चाहता था। मगर वह उसका राधा के साथ अवैध संबंध सहन नहीं कर सकता था। वह राधा को केवल दोषी नहीं ठहरा सकता था। वह समझ गया था कि राधा कृष्ण की धमकियों के सामने विवश हो गई थी जैसे कि वह हो गया था।

अलोक की समस्या का समाधान भाग्यवश अपने आप ही मिल गया। कृष्ण को न्यायालय ने छोड़ तो दिया था मगर नीला का भाई जो कॉलनि का गुंडा माना जाता था जज के निर्णय से संतुष्ट नहीं था। वह कई दिन कृष्ण का चुपके चुपके पीछा करता रहा और एक दिन अवसर पाकर उसने कृष्ण को सड़क पार करते समय अपनी गाड़ी के नीचे कुचल दिया और गाड़ी तुरंत भगा कर ले गया। जब इस दुर्घटना का समाचार राधा को मिला वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। सब लोगों को आश्चर्य हुआ कि वह इतना क्यों रो रही थी जबकि उस के मातापिता और भाई को दुःख तो हुआ था मगर उन्होंने दो चार आँसू ही बहाए थे वह भी शायद संसार को दिखाने के लिए। लोगों को कुछ समझ नहीं आया। हर व्यक्ति अपना अपना अनुमान लगाता और चुप कर के चला जाता। केवल अलोक ही इस मर्म को जानता था मगर परिस्थितियों को देखते हुए उसने इस मर्म को मर्म ही रहने दिया। यहाँ तक कि उस ने राधा से भी कभी इस विषय पर बात नहीं की।

अनूठा संबंध

उन्नीस सौ बासठ में जब भारत और चीन के बीच युद्ध चल रहा था संग्राम सिंघ शेखावत नाम का एक सैनिक पूर्वोत्तर सीमान्त प्रदेश की सीमा पर लड़ते हुए चीन की भारी गोलाबारी के कारण अपनी टुकड़ी से बिछड़ गया और क्योंकि उस भूखंड से वह समस्त परिचित नहीं था वह अपनी बंदूक के साथ चलते चलते शत्रु से अपनी जान बचा कर भारत से लगती हुई पर्वोत्तर सीमा के अंदर आ गया । एक एक पग बड़ी सावधानी तथा चतुराई से रखता हुआ वह चलता रहा और जब उसे गोलियों की आवाज़ नहीं सुनाई दी वह समझ गया कि अब वह शत्रु से सुरक्षित था अर्थात वह चीनियों की पकड़ से बाहर था। जब वह एक भय से मुक्त हुआ एक नया भय उसके मन में उत्पन्न हुआ। जिस ओर वह अपनी दृष्टि डालता उसे जंगलों के ऊँचे ऊँचे वृक्षों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ना देता। उन घने जंगलों के पीछे जब कभी वह बर्फ़ से ढ़की हुई पर्वतों के शिखरों को देखता तो उसे यह भय लगता कि यदि उसे शीघ्र कोई मैदानी मार्ग ना मिला तो उसे भीषण सर्दी का सामना करना पड़ेगा। वह राजस्थान में जोधपुर से चालीस मील दूर एक छोटे से गाँव का रहने वाला था जहाँ उसने रेत और सूखी काँटेदार झाड़ियाँ देखी थीं और जहाँ गरमी का प्रकोप अपने आप में एक उधारण था। उसके पास गरम वस्त्र भी नहीं थे। मगर वह एक सिपाही था। उसने सोचा जो होगा देखा जाएगा। इतने में शाम हो गई और अंधेरा होने लगा। रात व्यतीत करने के लिए वह एक

पेड़ पर चढ़ गया और घने पत्तों के अंदर छिप गया जैसे पक्षी घोंसलों में छिप जाते हैं।

क्योंकि संग्राम सिंघ पूर्व भूखंड में था वहाँ सूर्य शीघ्र उदय होता था। वह पक्षियों के चहचहाने और बंदरों की चींचीं की ध्वनी सुन कर जाग गया। वह वृक्ष से नीचे उतरा । उसे प्यास लग रही थी और भूख भी। जहाँ वह खड़ा था वहाँ से कुछ दूर उसे जल गिरने और बहने की आवाज़ सुनाई दी। वहाँ जाकर नदी में साफ़ और स्वस्छ जल को बहता देखकर वह अति प्रसन्न हुआ। उसने जल से पहले अपना मुँह धोया और जब उस जल को उसने चुल्लू से पिया तो उसे ऐसा लगा वह कोई अमृत पी रहा था। जल इतना मीठा और स्फूर्ति देने वाला था जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। उसे मरूस्थल में अपने गाँव का ध्यान आया जहाँ कोसों तक जल का नाम निशान नहीं था, जहाँ स्त्रियाँ सिर पर गागरें या बड़े बड़े मटके रख कर कई मील दूर तालाब से रूका हुआ जल लेने जाती हैं जो इतना गंदा और मैला होता है कि वास्तव में पीने योग्य नहीं होता। फिर भी लोग पीते हैं क्योंकि उस जल के अतिरिक्त और कोई जल वहाँ होता ही नहीं। जल पीने के पश्चात जब उसने अपनी दृष्टि इधर उधर डाली तो आसपास और नदी के तटों पर खड़े वृक्षों से कई प्रकार के लटकते हुए फल और झाड़ियों पर लगे हुए कई प्रकार के सुन्दर और रंगबिरंगे पुष्प देखकर वह हर्ष से फूला नहीं समाया। उसे ऐसा अनुभव हुआ वह हनुमान के समान रावण की वाटिका में पहुँच गया था। एक से एक फल स्वादिष्ट था - अनानास , संतरा , पपीता, नाशपाती, अमरूद, चैरी इत्यादि। इन सब फुलवाड़ियों, झरनों तथा वृक्षों के पीछे का दृश्य अर्थात हरे-भरे पर्वतों की श्रृंखला कितनी सुन्दर,

आकर्षक और रोचक लगती थी जिसे उसने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था।

संग्राम इतना तो जानता था यदि उसे किसी मानव निवास तक पहुँचना है तो उसे नीचे की ओर जाना पड़ेगा परन्तु उसे स्पष्ट मार्ग का कोई ज्ञान नहीं था। जितना समय वह चल सकता था चलता रहा। आरंभ में उसे जंगली जानवरों का भय भी था। मगर धीरे धीरे वह पशुओं और सुन्दर अद्‌भुत पक्षियों से परिचित हो गया। कोयल, बुलबुल, गौरैया, गरूड़, कौवा के अतिरिक्त और कई पक्षी थे जिनकी उसको पहचान नहीं थी। पशुओं में उसकी मुठभेड़ जंगली बिल्ली, बंदर , कस्तूरी मृग, बनमानुष, लंगूर तथा सियार से हुई। क्योंकि कोई भी पशु उसे कुछ नहीं कहता था उसका भय उन की ओर से कम होता गया। परन्तु एक दिन एक विचित्र घटना हुई जिस ने उसे और भी दृढ़ , निर्भीक और साहसी बना दिया। जब वह चल रहा था एक पाँचरंग वाला नाग उसके बाएँ पैर को छूता हुआ आगे निकला। वह नाग कोई बीस फुट लम्बा था और ऊपर से एक फुट चौड़ा। भले मरूस्थल में संग्राम साँपों से परिचित था मगर इतना बड़ा साँप उसने पहले कभी नहीं देखा था । वह रूक गया ताकि साँप निकल जाये। जब साँप की दुम ने उसके पाँव को छुआ तो उसे लगा जैसे उसने अपनी दुम से उसके पाँव को पकड़ लिया हो। उसके देखते देखते साँप उलटा चलते हुए संग्राम के पाँव को जकड़ता गया। संग्राम साँप की यह चाल देख कर समझ गया कि वह उसे शीघ्र डस लेगा। उसने फुर्ती से अपनी बंदूक कंधे से उतारी और उसके दस्ते को ज़ोर से पकड़ कर धार से नाग के सिर पर उस समय वार किया जब वह उसके पाँव के निकट पहँचने वाला था। वह जानता था कि सर्प का श्वास उसके सिर में होता है। बंदूक की धार ठीक अपने लक्ष्य पर बैठी

जिसके लगते ही सर्प के सिर से रक्त बहने लगा और कुछ ही क्षण में उसने दम तोड़ दिया। फिर धीरे धीरे संग्राम ने नाग के फंदों को अपनी टाँग से निकाला।

संग्राम सिंघ सर्प को मारने के पश्चात विश्राम करने के लिए बैठने ही वाला था कि अकस्मात उसकी दृष्टि कोई सौ फुट की दूरी पर एक शेरनी पर पड़ी जो उसे स्थिर दृष्टि से देख रही थी। उसने फिर अपनी बंदूक को पकड़ कर शेरनी को अपना लक्ष्य बनाया और वह बंदूक के घोड़े को दबाने वाला था कि शेरनी ने अपनी आँखें नीचे कर लीं। आँखों को नीचे रखते हुए शेरनी धीरे धीरे उसकी ओर बढ़ी। संग्राम समझ गया कि शेरनी को उस पर आक्रमण करने की कोई इच्छा नहीं थी। यदि वह ऐसा करना चाहती तो एक ही छलाँग में कर सकती थी। उसने बंदूक को हाथ में सीधा पकड़ लिया और जब शेरनी उसके निकट आई तो उसने अपना सिर संग्राम सिंघ के चरणों में रख दिया जैसे कोई भक्त अपना सिर किसी देवता की मूर्ती के चरणों में रख दे। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने शेरनी के सिर पर अपना हाथ फेरा। ऐसा करते ही शेरनी उसके पाँव को चाटने लगी। इतने में उसे आसपास से बहुत शोर सुनाई दिया। उसने जब आँख उठाकर देखा तो उसका आश्चर्य और भी बढ़ गया। जंगल के कई पशु जिन में अधिकतर लंगूर, बंदर और मृग थे अपनी पिछली टाँगों पर खड़े हो कर एक प्रकार का नृत्य कर रहे थे ठीक उसी प्रकार जैसे वानर सेना ने रावण के मरने पर किया था। वह समझ गया कि उस नाग की मृत्यु से वे अति प्रसन्न थे और वे उसका ऐसे स्वागत कर रहे थे जैसे प्रजा विजय सम्राट का सत्कार करती है।

संग्राम सिंघ के नीचे जाने की गति अब धीमी पड़ गई थी। उसके मन में अब जंगली जानवरों का भय नहीं रहा था। वहाँ की

हरियाली, स्वच्छ जल, स्वस्छ वायु और अनुकूल वातावरण ने उसको ऐसा ललचाया जैसे किसी बालक को नया खिलौना अपनी ओर खींचता हैं। जब कभी शेरनी उसको नीचे की ओर जाते हुए देखती वह उसके मार्ग में खड़ी हो जाती जैसे कोई प्रेमिका अपने प्रेमी को जाने से रोक रही हो। ऐसा प्रतीत होता था वह संग्राम पर मोहित हो गई थी। वह उसे अपने साथ घुमाने के लिए ले जाती और नये नये स्थान दिखाती। एक प्रकार से वह उसकी पर्यटन सहायक थी। उसके प्यार के सामने संग्राम भी झुक गया। एक दिन उसने शेरनी को हँसते हुए कहा, "तू अति सुन्दर है। आज से मैं तुम्हें सुन्दरी कह कर बुलाऊँगा।" शेरनी ने अपना सिर नीचे कर लिया जैसे वह उसका धन्यवाद कर रही हो। संग्राम कभी उसकी दुम को पकड़ता, कभी उसके कान को मसलता, कभी उसकी पीठ पर हाथ फेरता तो कभी उसकी गर्दन में अपने दोनो हाथ डाल कर उसके माथे को चूमता। सुन्दरी को बड़ा आनन्द मिलता। कभी कभी वह हर्ष से फूले नहीं समाती और उसके चतुर्दिक ऐसे चक्कर लगाती जैसे वह नाच रही हो। वह संग्राम से ऐसे घुलमिल गई थी जैसे वह उसका अपना हो। कभी वह उसके पॉंव चाटती तो कभी उसके हाथ। कभी वह उसके साथ लेट जाती और कभी झुक कर उसे संकेत देती कि मेरी पीठ पर बैठ जाओ मैं तुम्हें सैर करवाऊँगी।

संग्राम को मृग और बनमानुष बहुत अच्छे लगते थे मगर वे सुन्दरी के भय से दूर रहते थे। हाँ, जब सुन्दरी नहीं होती थी, वे उसके निकट आकर उससे खेलते थे। एक दिन सुन्दरी अपने साथ एक बड़े शेर, एक बड़ी शेरनी औंर एक छोटे शेर को ले आई और उन्हें अपनी भाषा में संग्राम से परिचित कराया। तब संग्राम को समझ आया कि बड़ा शेर सुन्दरी का पिता था, बड़ी शेरनी

उसकी माँ थी और छोटा शेर उसका भाई था। उसने यह अनुमान लगाया कि सुन्दरी अभी कंवारी थी। परन्तु वह नहीं जानता था कि सुन्दरी का एक प्रेमी था। उसने एक दिन सुन्दरी को संग्राम के साथ देख लिया और देखते ही द्वेष से जल उठा । उसने क्रोध में आकर संग्राम पर वार करने की चेष्ठा की मगर सुन्दरी ने उसे ऐसे आँखे दिखाई कि वह वहाँ से तुरंत भाग गया और फिर कभी नहीं आया। इतने दिन वहाँ रहते हुए संग्राम मौसम की अदल बदल से भी अवगत हो गया था। जब कभी वर्षा होती वह घने पेड़ों की छाल में बनमानुष के समान सुकड़ कर बैठ जाता। एक बार इतने ज़ोर से वर्षा हुई की चार लंगूर उसके आसपास उसको वर्षा से बचाने के लिए बैठ गए चाहे वे स्वयं भीग गए। संग्राम ना तो दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी था और ना ही मनोविज्ञान का परन्तु वह सोच में पड़ जाता कि क्या मानव से अधिक यह जंगली जीव अधिक सभ्य नहीं थे या इनमें मानव से अधिक स्नेह और सहानुभूति नहीं थी।

एक दिन वह कपड़े उतार कर नदी में स्नान करने गया। उसने बंदूक तो वृक्ष की एक मोटी शाखा के साथ लटका दी और अपने कपड़े नदी के निकट एक झाड़ी के पास रख दिये । नदी का जल इतना शीतल था कि वह अधिक समय तक स्नान करता रहा और जब स्नान करके वह बाहर आया उसने देखा उसके कपड़े वहाँ नहीं थे यद्यपि उसकी बंदूक शाखा के साथ लटक रही थी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कपड़े कहा गए। शायद वानरों ने कोई उत्पाद किया था। उसने जब अपनी दृष्टि ऊपर डाली तो एक वृक्ष पर कुछ वानरों को देखा परन्तु उसके कपड़े उनके पास नहीं थे। वह सोच रहा था कि क्या किया जाए, एक वानर वृक्ष से नीचे उतरा और संग्राम को यह संकेत देकर की मेरे पीछे आओ वह थोड़ी आगे जा कर वहाँ से भाग गया। तब संग्राम ने देखा कि उसके

कपड़े सुन्दरी के पास थे। संग्राम ने बड़े क्रोध से सुन्दरी को कहा, " तुझे लज्जा नहीं आती मुझे नंगा देखकर। कंवारी होकर ऐसा उत्पाद करती हो।" सुन्दरी को संग्राम की बात अच्छी नहीं लगी। वह संग्राम के नग्न शरीर को देखकर विषयवासना से व्याकुल हो गई परन्तु संग्राम की आँखों में क्रोध की अग्नि देखकर वह कपड़ों का वहीं छोड़कर चली गई। उसने मुड़ कर भी नहीं देखा। जब वह अगले दिन दोपहर तक नहीं आई तो संग्राम को शोच हुआ। वह सोच रहा था कि क्या करूँ कि एक वानर ने अपनी टाँगों पर खड़ा होकर उसे संकेत दिया कि सुन्दरी थोड़ी दूर झाड़ी के पीछे बैठी थी जहाँ से वह कभी झाँक कर संग्राम को देखती थी। जब संग्राम वहाँ गया तो सुन्दरी ने आँख से आँख नहीं मिलाई। उसके पास जाकर संग्राम ने उसके सिर और पीठ पर अपना हाथ फेरा और कहा," मुझे क्षमा करना । मैंने क्रोध में आकर तुम्हें बुरा भला कहा।" संग्राम की बात सुनकर सुन्दरी की आँखों में आँसू आ गए।

संग्राम को कोई भ्रम नहीं था कि सुन्दरी उससे ऐसे प्रेम करती थी जैसे कोई मानव करता है। जहाँ वह जंगली जीव के भय से मुक्त हुआ वहाँ एक नव्य भय ने उसे घेर लिया था। उसे आशंका होने लगी कहीं प्रेम में निराश होकर सुन्दरी कुछ कर ना बैठे । वह उस पर आक्रमण करके उसे अपना बंदी बना सकती थी या मार भी सकती थी क्योंकि उसका पिता जंगल का राजा था। यह भी संभव था वह आत्महत्या कर ले। केवल सुन्दरी ही उस भूखंड में उसकी एक मात्र मित्र थी, सहायक थी और रक्षक भी थी। वह नहीं चाहता था कि सुन्दरी आत्महत्या कर ले मगर उसकी बुद्धि उसे कोई उचित मार्ग नहीं दिखा रही थी। यद्यपि यह सिद्ध था कि वह भी सुन्दरी से प्रेम करता था परन्तु उसके प्रेम में कोई वासना नहीं थी। उसकी यह चिंता और भी गंभीर हो गई जब एक

दिन ऐसी घटना हुई जिसका वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। उसने अपनी पैंट धोकर झाड़ी के ऊपर सूखने के लिए डाल दी और अपनी कमीज़ कमर से बांध कर घास पर लेट गया। लेटे हुए उसे नींद आ गई। थोड़े समय के पश्चात उसे ऐसा लगा कोई जीव उसकी टॉंग के ऊपर चल रहा था। उसकी उसी समय नींद खुल गई और जब उसने देखा कि सुन्दरी अपनी जीह्वा घुटने के ऊपर उसकी टॉंग चाट रही थी वह भयभीत हो उठा। उसने सुन्दरी को कुछ नहीं कहा क्योंकि उसे अब उससे भय लगने लगा था। अब संग्राम अति शंकापूर्ण था। उसका समाधान कैसे निकाला जाए उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसे यह भी कोई अनुमान नहीं था कि वह जंगल में कितने समय से रह रहा था क्योंकि जो घड़ी उसने कलाई पर बॉंध रखी थी वह केवल समय बताती थी तिथि और वार नहीं। वह यह अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि वह कब कहाँ से निकलेगा। उसने सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया।

इतने में भारत-चीन का युद्ध समाप्त हो गया। काफ़ी भारतीय सैनिक इस युद्ध में गुम हो गए थे। रक्षा मंत्रालय के आदेश पर लापता सैनिकों की खोज आंरभ हो चुकी थी। सरकार जानती थी कि कई सैनिक पूर्वोत्तर प्रदेश के जंगलों में लुप्त थे। हेलिकाप्टरों द्वारा उनका पता लगाया जा रहा था। दो बार संग्राम सिंघ ने हेलिकाप्टर को उड़ते हुए देखा और अपना हाथ ऊँचा करके उनको अपने होने का संकेत दिया मगर वह उनकी दृष्टि में नहीं आया। फिर भी अब उसे थोड़ी सी आशा हुई कि कभी तो उसका हेलीकाप्टर से संपर्क होगा। सुन्दरी ने भी उस हेलीकाप्टर को देखा और उसकी ओर संग्राम को अपना हाथ ऊँचा कर के हिलाते हुए भी देखा। वह जान गई कि कोई उसकी खोज में लगा

हुआ था। अब वह अधिक से अधिक समय उसके साथ जुड़ी रहती। यह स्पष्ट था वह संग्राम को खोना नहीं चाहती थी। संग्राम को भी यह चिंता थी कि यदि हेलीकाप्टर से उसका संपर्क हो भी जाए तो सुन्दरी उसके मार्ग में कोई ना कोई बाधा खड़ी कर देगी। यह संभव था यदि सुन्दरी ने कोई रूकावाट डाली तो हेलीकाप्टर में बैठे चालक और उसका साथी उसे गोली से मार सकते थे परन्तु संग्राम ऐसा नहीं चाहता था। वह सुन्दरी को मारना तो एक ओर रहा उसे कोई खरोंच भी पहुँच वह इतना भी सहन नहीं कर सकेगा।

दो दिन के पश्चात हेलिकाप्टर फिर आया। इस बार उसके चालक और साथी ने संग्राम को देख लिया। संग्राम ने उन्हें अपने हाथ की चिंह भाषा से अपना परिचय दिया। चालक ने उसे संकेत दिया कि ऊँचे वृक्ष होने के कारण वह हेलीकाप्टर को वहाँ नहीं उतार सकता और पास मे जो चट्टान थी उसका तल इतना असमतल था कि उस पर भी हेलीकाप्टर नहीं उतारा जा सकता था। उस ने संकेत दिया कि थोड़ा खुले स्थान पर आ जाओ तब मैं रस्सी फैंकऊँगा जिसे तुम पकड़ लेना और फिर हम उसे ऊपर खींच लेंगे। उस समय सुन्दरी वहाँ नहीं थी मगर हेलीकाप्टर की आवाज़ सुनकर वह झट वहाँ आ गई। इस से पूर्व वह संग्राम के मार्ग में खड़ी हो जाती या कोई बाधा डालती, संग्राम ने रस्से के कोने को पकड़ लिया था। सुन्दरी ने छलांग लगा कर संग्राम तक पहुंचने का प्रयास किया मगर अब वह उसकी पकड़ से बाहर था। सुन्दरी वहाँ से दौड़ कर चट्टान की चोटी पर पहुँच गई और जब हेलीकाप्टर चट्टान के ऊपर से जा रहा था उसने एक ऊँची छलांग लगाई, परन्तु वह हेलीकाप्टर तक पहुँचने में असफल रही

और चट्टान के साथ लगती एक बड़ी सी खाई में धड़म से जा गिरी।

संग्राम ने जब सुन्दरी को खाई मे गिरते देखा तो उसे बड़ा दुःख हुआ और उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह जानता था कि खाई इतनी गहरी थी कि सुन्दरी का वहाँ से बच कर निकलना शेषकर जब उसने इतनी ऊँचाई से छलांक लगाई थी लगभग असंभव था। संग्राम को कुछ दिन इटानगर सैनिक अस्पताल में जाँच पड़ताल तथा चिकित्सा के लिए रखा गया । वहाँ से छुट्टी मिलते ही उसे अपने घर भेज दिया गया। वह अपने माता पिता और भाईयों बहनों से मिलकर हर्ष से फूला नहीं समाया और वह जब उनके गले मिल कर प्रसन्नता के आँसू बहा रहा था उसे सुन्दरी का ध्यान आया क्या वह भी अपने माता पिता और भाई से मिल सकी होगी या नहीं। परन्तु संग्राम सुन्दरी के प्रेम को कभी भुला नहीं पाया और कभी वह सोचता क्या ही अच्छा होता यदि सुन्दरी शेरनी ना होती अपितु मानव होती। शायद अगले जन्म में सुन्दरी उसको एक कुमारी के रूप में मिल जाए तो वह अपने आप को भाग्यशाली समझेगा।

* * * * * * * * *

खिलवाड़

हम यह नहीं कह सकते कि वासदेव और जगदीश में अटूट मित्रता थी मगर मित्र वह अवश्य थे चाहे वासदेव का पिता एक भूमिदार था और जगदीश का पिता ठाकुर होने के साथ साथ गाँव का मुख्या भी था। उनकी मित्रता के कई कारण थे। दोनो की आयु लगभग समान थी। दोनो का एक ही गाँव में जन्म हुआ था। एक ही पाठशाला से विद्या प्राप्त की थी। घर भी पास पास थे। बचपन से इकट्ठे ही खेलते आए थे। मिल कर पतंग उड़ाते थे, नदी में तैरते थे, गुल्ली डंडा खेलते थे, खेतों से गन्ना, गाजर और फल चुराते थे। कई कई घंटों वृक्ष के नीचे या नदी के तट पर या फिर कुएँ की मुंडेर पर बैठ कर बातें करते थे। चाहे वासदेव के पिता वीर भान ने कई बार समझाया, "बेटा, जगदीश बड़े आदमी का बेटा है। हम ठाकुर की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। अच्छा यही होगा तुम जगदीश से मिलना कम कर दो।" मगर वासदेव सदा यही उत्तर देता, " बापू, जगदीश भले ठाकुर परिवार का है मगर उसमें ऐसा कोई घमंड नहीं जिसकी तुम्हें चिंता हो रही है।"

मित्रता जब तक चलती रही दोनो एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते थे और मतभेद जातपात ऊँच नीच से दूर रहते थे। परन्तु उनकी मित्रता अधिक समय तक नहीं चली। उसका कारण था गाँव की एक सुन्दरी माया। दोनो उसे चाहते थे। जब भी वासदेव माया से मिलता तो जगदीश से छिप कर और वही जगदीश करता। उनका इस प्रकार माया से मिलना माया के लिए एक समस्या थी। वह जगदीश को कैसे बताए कि वह वासदेव से

प्रेम करती है और इसीलिए वह जगदीश से डरती थी क्योंकि उसका पिता ठाकुर होने के नाते उसको और उसके परिवार को कोई भी हानि पहुँचा सकता था। इसके अतिरिक्त वासदेव की तुलना में जगदीश के अंदर गर्व और आतंक अधिक था, विनीत भाव तथा कोमलता कम। जब कभी वासदेव माया का हाथ पकड़ता तो ऐसा लगता जैसे किसी ने उसकी हथेली पर गुलाब का फूल रख दिया हो। माया के मन में एक भय भी था कि इस त्रिकोणीय प्रेम का परिणाम किसी के लिए भी हानिकारक हो सकता था।

माया का पिता नेकी राम पटवारी था। क्योंकि ठाकुर की गाँव के आसपास हज़ारों एकड़ ज़मीन थी उसकी ठाकुर से अच्छी जान पहचान थी। ठाकुर भी उसे समय समय पर उपहार देकर संतुष्ट रखता था। जब नेकी राम के कान मे भनक पड़ी कि ठाकुर का छोटा पुत्र जगदीश माया से प्रेम करता है तो वह माया को ठाकुर की बहू बनाने के स्वप्न देखने लगा। यद्यपि वह जानता था कि ठाकुर माया को इतनी सरलता से स्वीकार नहीं करेगा फिर भी उसे विश्वास था कि अपने बेटे के प्रेम के आगे उसे झुकना ही पड़ेगा। मगर माया के भाग्य की पुस्तक में कुछ और ही लिखा था। वह जगदीश से घृणा तो नहीं करती थी मगर उससे दूर रहने का प्रयास अवश्य करती थी। जगदीश ने जब देखा कि उसके प्यार का उत्तर आशाजनक नहीं था, कभी उसे दुःख होता तो कभी चिंता। उसने कई बार माया से पूछा भी कि क्या वह उससे प्यार करती है मगर माया ने इधर उधर की बात करके उसे टाल देती। माया के निषेधार्थक व्यवहार से जगदीश के मन में उसे पाने की चाह तीक्षण हो गई। उसके लिए अब अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करना दिन

प्रतिदिन कठिन होता जा रहा था। वह किसी ना किसी प्रकार माया को अपनी बाहों में जकड़ना चाहता था।

एक दिन शाम के कोई पाँच बजे माया कुएँ से पानी लेने के लिए गई। जगदीश ने उसे जाते हुए देख लिया और चुपके से उसका पीछा करते हुए वह भी कुएँ पर पहुँच गया। उसने जब माया को पकड़ कर अपने सीने से लगाने का प्रयत्न किया वह चिल्लाने लगी। उस समय उन दोनो के अतिरिक्त और कोई नहीं था। माया ने वहाँ से भागने का प्रयास किया मगर वह अपने आपको जगदीश के चुंगल से छुड़ाने में असफल रही। दैवात् वासदेव अपने खेत से होकर वापिस घर जा रहा था। उसने जब माया के चिल्लाने की आवाज़ सुनी तो वह भागता हुआ आया। पिछली शाम होने के कारण कुछ अंधेरा हो गया था और क्योंकि जगदीश की पीठ उसके सामने थी उसने जगदीश को नहीं पहचाना। वहाँ पहुँचते ही बिना कुछ देखे और सोचे समझे वासदेव ने जगदीश को पीछे से इतने बल से मुक्का मारा कि वह जो लड़खड़ा कर गिरा तो उसका सिर कुएँ की मुंडेर से इतनी ज़ोर से टकराया कि उसका सिर फट गया और देखते देखते उसकी वहीं मृत्यु हो गई। वास्तव में वासदेव का जगदीश को जान से मारने का कोई संकल्प नहीं था। जगदीश पर वार करने से पूर्व यदि उसने उसे देख लिया होता तो शायद वह ऐसा नहीं करता। इस हड़बड़ाहट में वासदेव भयभीत होकर बिना सोचे समझे वहाँ से भाग गया। उसका घटनास्थल से भागना एक प्रकार का प्रमाण था कि उसने ही जगदीश की हत्या की थी। यदि वह वहाँ से ना भागता तो माया की गवाही से शायद वह बच जाता कि जगदीश की मृत्यु केवल एक दुर्घटना थी जिस में वासदेव का कोई दोष नहीं था। वासदेव जब वहाँ से भाग रहा था किसी ग्रामवासी ने उसे भागते हुए देख लिया। उसने ही बाद में

न्यायालय के अंदर इस बात की पुष्टि की कि वासदेव ही जगदीश का घातक था। माया और उसके पिता दोनो के स्वप्न चूर चूर हो गए यद्यपि उसके कारण विविध थे।

रात्री के कालेपन में वासदेव चलता रहा। वह रूका नहीं। उसे भय था कोई उसे पकड़ ना ले। उसका समीप पड़ाव अपने चाचा का घर था जो उसके गाँव से पंद्रह मील दूर था। जब वह वहाँ पहुँचा आधी रात हो चुकी थी। उसका चाचा उसे इतनी रात गए देख कर चकित रह गया। वासदेव ने कहा, "चाचा मुझे भूख लगी है। मैं बहुत थक गया हूँ।" खाना खाने के पश्चात उसने सारी बात जब चाचा को बताई तो उसने उसे मंत्रणा दिया, " देखो बेटा, कानून के हाथ बड़े लम्बे होते हैं। पुलिस तुम्हें पाताल से भी खोज निकालेगी। मेरी बात मानो तो घर वापिस चले जाओ और थाने जाकर आत्मसमर्पण कर दो। तुम जितना दूर भागोगे तुम्हारे अपराध की गंभीरता उतनी बढ़ जाएगी। हो सकता है माया की गवाही से तुम कठोर दंड से बच जाओ । अब तुम सो जाओ। सूर्योदय होते ही यहाँ से निकल जाना । यदि तुम्हें अकेले जाने में डर लगता है तो मैं तुम्हारे साथ चला चलूँगा।" वासदेव चारपाई पर लेट गया मगर उसे नींद नहीं आई। अभी सूर्योदय में कुछ समय शेष था तो उसने दूर से दो पुलिस कर्मचारियों को चाचा के घर की ओर आते हुए देखा। वह घबरा गया और एक बार फिर बिना सोचे समझे और बिना चाचा को बताए वहाँ से भाग गया। चाचा को आश्चर्य हुआ । पुलिस वहाँ से ख़ाली हाथ लौट तो आई मगर जाते जाते चाचा को चेतावनी दे आई, " यदि वह तुम्हारे यहाँ आए तो हमें तुरंत सूचना देना। नहीं तो हम तुम्हें जेल में डाल देंगे।" वहाँ से भागकर वासदेव कहाँ गया कुछ पता नहीं चला।

इस घटना को कई वर्ष बीत गए। इस बीच माया का विवाह घरोंदा नाम के एक छोटे से नगर में रहनेवाले वैद्य चेतन दास के पुत्र मेंघराज से हो गया। उस समय मेंघराज की आयु बाईस वर्ष थी। वह दस श्रेणी तक पढ़ा था मगर काफ़ी समझदार था। उसे पिता ने अपने साथ काम पर लगा दिया। जब उसने अपने पिता से चिकित्सा संबंधी शिक्षा प्राप्त कर ली तो उसने आधुनिक ढंग से औषधायलय को चलाने की युक्ति बनाई। जहाँ उसका पिता दवाई पुड़ियों में बांध कर देता था जो खाने में बड़ी कड़वी लगती थी, मेंघराज ने उसे गोलियों का रूप देकर शीशी में बंद करके देने की प्रणाली बनाई। अपने कार्य में वह सफल रहा। धीरे धीरे उसकी रूचि जड़ी बूटियों में होने लगी। किसी ने उसको बताया कि इस विषय पर हरिद्वार में रहने वाले पुराने वैद्य अधिक जानकारी दे सकते हैं। वह हरिद्वार जाने की योजना बना रहा था कि इतने में कुंभ मेला निकट आ गया। उसे पिता ने कहा, " तुम हरिद्वार जाने की योजना बना रहे थे। मेरे विचार में यदि तुम कुंभ मेले के अवसर पर जाओ तो अच्छा होगा। मेला भी देख लोगे और साथ साथ काम भी कर लोगे। और हाँ माया को भी साथ ले जाना।" माया ने इस मेले के विषय में पहले नहीं सुना था। उसने जब उत्तेजित होकर पूछा तो चेतनदास ने उसे संक्षिप्त में बताया, "यह मेला मकर राशि में बृहस्पति और सूर्य का योग होने से प्रयाग, हरिद्वार और पुष्कर तीर्थस्थानों में लगता है। यहाँ सारे भारत से आनेवाले श्रद्धालु गंगा में स्नान करते हैं जिस से उनके पाप धुल जाते हैं।"

"हमने तो ऐसे कोई पाप नहीं किए हैं।" माया ने हलकी से मुस्कान के साथ कहा।

"बेटी, बहुत से पाप हम अनजाने में या अपनी अज्ञानता के कारण करते हैं। पाप पुन्य का निर्णय तो वही करता है जिसे हम भगवान कहते हैं।" चेतन दास ने माया को समझाने की चेष्टा की।

कुंभ मेला आंरभ होने से दो दिन पूर्व मेंघराज और माया हरिद्वार पहुँच गए ताकि उनको रहने के लिए उचित स्थान मिल जाए। जब मेला आरंभ हुआ बहुत भीड़ थी। लाखों की संख्या में यात्री वहां एकत्रित हुए थे। यद्यपि वे भिन्न भिन्न प्राँतों से आए थे और उनकी भिन्न भिन्न भाषाएँ थीं परन्तु उनका लक्ष्य एक ही था। इतने लोग माया ने पहले कभी एक साथ नहीं देखे थे। जब उसने नागाओं की टोली को देखा पहले तो वह भयभीत हो गई । उन वस्त्रहीन साधुओं के लम्बे लम्बे केश, माथे पर लम्बा तिलक, राख और पीली मिट्टी से भरे हुए शरीर , गले में रूद्राक्ष की डोडियों की मालाएँ, लिंग के पिछले भाग पर बंधा हुआ सूत और एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में कमंडल देखकर माया का घबराना अस्वाभाविक नहीं था। मेंघराज ने उसे समझाया, " डरने की कोई बात नहीं। ये शैव सम्प्रदाय के साधु हैं जो हर ऋतु में नंगे रहते हैं। अभी देखना ये सब नंगे ही नदि में स्नान करेंगे।"

"इतने ठंडे पानी में इन्हें सरदी नहीं लगेगी क्या?" माया ने आश्चर्य से पूछा ।

"नहीं, ये अभ्यस्त हो जाते हैं।"

"ये रहते कहाँ हैं? अपना पेट कैसे भरते हैं?"

"इस विषय पर मैं भी अधिक नहीं जानता । शायद पर्वतों की गुफाओं में, जंगलों और वादियों में रहते हैं। ये शिव के उपासक हैं। दिन रात उसकी पूजा में लगे रहते हैं । इनका विश्वास है कि महादेव इनकी भक्ति और एक मात्र निस्वार्थ उत्सर्ग से प्रसन्न

होकर इन्हें स्वर्ग में भेज देंगे और ये सर्वदा संसार के बंधनों से मुक्त हो जाएँगे।''

''क्या आप इसमें विश्वास करते हैं?''

''कुछ ठीक नहीं कह सकता। यूँ समझो आधा हाँ, आधा नाँ।''

''यह तो कोई उत्तर ना हुआ।''

''फिर कभी बैठ कर बात करेंगे। चलो, इन नागाओं को स्नान करता हुआ देखते हैं।''

यात्रा समाप्त होने पर वे अपने नगर लौट आए।

उन नागाओं में एक साधु वासदेव था। चाचा के घर से भागने के पश्चात वह कैसे उन नागाओं से मिला और उन्होंने कैसे उसे अपनी बिरादारी में मिलाया यह वह ही जानता था। जब मेंघराज और माया नागाओं को स्नान करते हुए देख रहे थे अकस्मात वासदेव की दृष्टि माया पर पड़ी। वह एकदम सतर्क हो गया। वर्षों से दबी हुई चिंगारी सहसा भड़क उठी। उसके लिंग का सूत टूट गया और वह नदी से निकलते ही भागा । वह समझ गया कि माया के साथ जो व्यक्ति था वह उसका पति था। मगर माया ने उसे नहीं देखा। वासदेव के मन में माया से मिलने की इच्छा हुई जिसे वह दबा नहीं सका। उसने दूर जाकर एक यात्री जो स्नान करने गया था उसके कपड़े चुराए और उन्हें पहनकर वह मेले में माया की खोज में लग गया मगर वह उसे नहीं मिली। पूर्व प्रेमी अपनी प्रेमिका को देखकर व्याकुल तो हुआ ही परन्तु उसकी व्याकुलता ने एक नया रूप धारण कर लिया। उसने यह निर्णय लिया चाहे कुछ हो जाए वह एक बार माया से अवश्य मिलेगा। प्रेम की अंधता मे वह भूल गया कि माया अब एक विवाहित स्त्री थी। उसके जीवन में प्रविष्ट करके उसके गृहस्थ जीवन में आग लगाने वाली बात थी। वह यह भी भूल गया कि कानून की दृष्टि में वह अभी

भी अपराधी था और पकड़े जाने पर उसे कठोर दंड शायद मृत्यु दंड भी मिल सकता था। मगर समस्या यह थी कि माया तक कैसे पहुँचा जाए। वह नहीं जानता था कि माया कहाँ रहती है। यदि वह अपने गाँव माया के निवास स्थान का पता लगाने जाए तो निश्चित रूप से उसकी पहचान हो जाएगी और वह पकड़ा जाएगा। वह वहाँ से वापस नागाओं की टोली में नहीं आया। उसने हरिद्वार से दूर जा कर रात व्यतीत की मगर चिंता के कारण उसे नींद नहीं आई। लेटे लेटे उसे ध्यान आया क्यों ना चाचा के घर जाकर माया का पता पूछे। वह अवश्य जानता होगा। उसका ऐसा सोचना सही था।

वासदेव अपने चाचा के घर अपने मौलिक रूप में नहीं जा सकता था। क्योंकि वह दस वर्ष नागा साधु रह चुका था उसने सोचा उसे वहाँ साधु बनकर जाना चाहिए। उसका ऐसा सोचना भी ठीक था। मगर उसके पास पैसे नहीं थे। अगले दिन उसने एक यात्री जो अपने कपड़े उतार कर स्नान कर रहा था, उसकी कमीज़ की जेब से बटुवा निकाल लिया जिस में सात सौ से अधिक के नोट थे। उसने बाज़ार जाकर साधु के कपड़े ख़रीदे जिन्हें पहनकर वह बस से चाचा के घर पहुँच गया। घर के बाहर खड़े होकर उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, " अलख निरंजन।" चाचा ने आवाज़ सुनकर दरवाज़ा खोला। वासदेव ने कहा, " मुझे भोजन करना है।" चाचा ने उसे नहीं पहचाना मगर वह उसे एक साधु की दृष्टि से अंदर ले गया और उसे पेट भर भोजन खिलाया।

भोजन करने के पश्चात वासदेव ने अपने चाचा को अपना मौलिक रूप बताया जिसे सुनकर चाचा काँप उठा। वासदेव ने कहा, " देखो चाचा, मैं तुम्हें क़ोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता। तुम मुझे केवल माया के घर का पता दे दो। " इस से पूर्व चाचा कोई टालमटोल करता, वासदेव ने उसे समझाया, " चाचा , तुम्हें पता

तो देना ही पड़ेगा। इधर उधर की बातें करने से कोई लाभ नहीं होगा और ना ही मैं तुम से कोई उपदेश सुनना चाहता हूँ। हाँ , पता मिलते ही मैं यहाँ से तुरंत चला जाऊँगा। यह मेरा वचन रहा। यदि तुमने मुझे माया का पता नहीं दिया तो मैं तुम्हें और तुम्हारे परिवार को तांत्रिक शक्ति से भस्म कर दूँगा।'' थोड़ी देर सांस लेकर वासदेव ने फिर कहा, '' एक बात और , मेरे आने का उल्लेख किसी से भी ना करना, पुलिस से भी नहीं, अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'' चाचा ने डर के मारे वासदेव को माया का पता दे दिया और उसी डर के मारे उसके आने की सूचना पूलिस को नहीं दी।

अगले दिन वासदेव उसी साधु के वेश में घरोंदा पहुँच गया और दो चार घरों से भिक्षा माँगता हुआ कोई बारह बजे के लगभग वह माया के घर के आगे जा कर खड़ा हो गया। फिर उसने ज़ोर ज़ोर से आवाज़ लगाई, '' अलख निंरजन।'' संयोग से उस समय माया घर पर अकेली थी। जब उसने दरवाज़ा खोला तो वासदेव ने कहा, '' मुझे भोजन करना है।'' माया उसे आदर सहित अंदर ले गई और उसे चटाई पर बिठा कर भोजन खिलाया। भोजन करने के बाद वासदेव ने कहा, '' क्या तू मुझे नहीं पहचाँनती?''

माया ने सिर हिला कर कहा, '' नहीं।''

''अच्छी तरह से देखो।''

''नहीं'' माया ने फिर वही उत्तर दिया। अब वह अंदर से घबरा रही थी।

वासदेव ने अपने बाएँ कान के ऊपर लटकी हुई जटा को हाथ से हटा कर कहा, '' अब देखो।''

वासेदव के बाएँ कान के लटकते हुए भाग पर एक छोटा सा काला तिल था जिसे देखते ही माया ने उसे झट पहचान लिया। वह

चकित थी यह चमत्कार कैसे हुआ। वह पूछने लगी, " तुम यहाँ कैसे आए? तुम्हें मेरा पता किस ने दिया? इतने वर्ष तुम कहां रहे?"

वासदेव ने कहा,"इतने प्रश्न एक साथ करोगी तो मैं उत्तर कैसे दूँगा।" फिर उसने संक्षिप्त में माया को अपनी राम कथा सुनाई। अंत में बताया कि जब हरिद्वार में माया जिन नागाओं को स्नान करते हुए देख रही थी वह उनमें से एक था। यद्यपि माया ने उसे नहीं देखा, मगर उसने माया को देख लिया था और तभी से वह अति व्याकुल था। वासदेव की कथा सुनकर माया प्रसन्न भी थी और भयभीत भी थी। वह विवाहित थी और वह अपराधी था। दोनो का संगम होना अब अंसभव था। दोनो को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। बातें करते करते उन्हें एक घंटे से ऊपर हो गया। इतने में माया ने अपनी सास को आते हुए देख कर कहा, " अब तुम जाओ। कल इसी समय फिर आना।" वासदेव वहाँ से लौट आया। वह नगर के बाहर एक मन्दिर में जा कर सो गया । समस्या बड़ी गंभीर थी।

अगले दिन वासदेव फिर माया के घर गया और कहने लगा, " अब मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता। जब से मैंने तुम्हें हरिद्वार में देखा है, मैं अपनी सुध बुध खो बैठा हूँ। तुम मेरे साथ भाग चलो। हम जंगल में एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहेंगे। कोई हमें ढूँढ नहीं सकेगा।"

"जो तुम कह रहे हो वो व्यवहार में लाने योग्य नहीं है और यह मत भूलो मेरा एक बच्चा भी है। यदि हमारे भाग्य में प्रेम मिलन नहीं लिखा था अब हम प्रेम के अंधापन में इस प्रेमरेखा को और अधिक बिगाड़ ही सकते हैं, इसे बना नहीं सकते। परन्तु यह मत समझना मैं तुम से ...."

वासदेव ने बात काटते हुए कहा, " मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता। यदि तुम मेरे साथ नहीं आई तो मैं अपनी तांत्रिक शक्ति से तुम्हारे पति को भस्म कर दूँगा।"

"यह तुम क्या कह रहे हो," माया ने घबरा कर कहा।

वह समझ गई थी कि वासदेव अब मरने मारने पर तुला हुआ था और उसे समझाने से कोई लाभ नहीं होगा। इस समस्या का समाधान निकालने के लिए उसे चतुराई से काम लेना पड़ेगा। उसने कहा, " तुम मुझे थोड़ा और समय दो। और कुछ नहीं अपने बालक का उचित प्रबंध तो कर लूँ।"

वासदेव चार दिन निरंतर माया के घर उसी समय जाता रहा। एक पड़ोसी को आश्चर्य हुआ कि साधु प्रतिदिन वहाँ क्या करने आता था और इतने समय तक घर के अंदर क्यों रहता था। उसने यह बात मेंघराज के कान में डाली। इस घटना को प्रमाणित करने की दृष्टि से पांचवें दिन वह पड़ोसी के घर के अंदर छिप कर बैठ गया । जो बात पड़ोसी ने कही थी वह सिद्ध हो गई। उसने सोचा माया से कुछ पूछना व्यर्थ था। यदि वह कुछ बताना चाहती तो पहले दिन ही बता देती। उसने थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवाई । छटे दिन जब वासदेव माया के घर से निकल रहा था पुलिस ने उसे पकड़ लिया। थाने में पूछताछ करने से पुलिस को पता चला कि यह वही वासदेव था जिसने दस वर्ष पूर्व जगदीश की हत्या की थी। काफ़ी समय तक न्यायलय में कारवाई चलती रही। अंत में उसे दस वर्ष का कठोर दंड मिला। पकड़े जाने से वासदेव को केवल इतनी तस्सली हुई कि वह अपने माता पिता और भाई बहनों से दस वर्ष के उपरांत मिल सका।

जेल में उसे एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि उसने कुछ बंदियों से मिलकर जेल की दीवार में सींद लगाकर भागने की

योजना बनाई। जिसमें वह सफल रहा। भागकर वह कहाँ गया उसका अनुमान केवल माया ही लगा सकती थी क्योंकि उसके अतिरिक्त वासदेव ने किसी और को नहीं बताया कि वह नागा साधु था। मगर माया ने यह मर्म अपने मन और दिल से बाहर नहीं निकाला। मेंघराज को इस बात का ज्ञान तो हो ही गया था कि विवाह से पूर्व वासदेव माया का प्रेमी था मगर इतने वर्ष बीत जाने के पश्चात उसने गड़े मुर्दे उखाड़ना उचित नहीं समझा। फिर भी वह कभी सोचता दस वर्ष के पश्चात जब वासदेव जेल से छूटेगा तो क्या होगा। वासदेव का जेल से भागने का समाचार सुन कर उसकी चिंता बढ़ गई कहीं वह फिर ना आ जाए। सतर्क रहने के अतिरिक्त वह और क्या कर सकता था। जब इस घटना को कई मास हो गए और वासदेव ने फिर अपना मुख नहीं दिखया तो उसे थोड़ी सी संतुष्ठता हुई कि अब वह नहीं आएगा और वह नहीं आया। वह कहाँ चला गया था यह या तो वह जानता था या फिर भगवान। भगवान से कोई पूछ नहीं सकता था और वह किसी को बता कर नहीं गया था।

दस वर्ष के पश्चात जिस दिन वासदेव को जेल से छूटना था उसी दिन अगला कुंभ मेला आरंभ होना था। उससे दो दिन पूर्व माया ने अपने पति से मेला देखने की इच्छा प्रकट की। वह मान गया। यदि वह जानता होता कि कुंभ मेले में वासदेव ने माया को देखा था तो शायद वह इंकार कर देता। जिस दिन नागाओं ने स्नान करना था माया के कहने पर मेंघराज उसे तट पर ले गया। जब माया उनको टकटकी बांधकर देख रही थी मेंघराज ने हँसते हुए कहा, " पिछले मेले में तो तुम्हें इनसे बहुत डर लगता था। मगर अब तुम उनके लिंग इतने एकाग्रचित से देख रही हो जैसे

तुम्हें बड़ा स्वाद आ रहा हो।'' माया यह कहकर ''चलो घर चलते हैं'' वहाँ से तुरंत चल पड़ी और मुड़ कर नहीं देखा।

बस में बैठी वह सोच रही था, '' प्रेम संबंध भी कैसा विचित्र संबंध है। जिस पति के साथ मैं रहती हूँ, खाती पीती हूँ और जिसके मिलाप से मैंने एक बच्चे को जन्म दिया, उसी से मैं अपने जीवन के कई अंश गुप्त रखती हूँ। मैं क्या कर सकती हूँ। मैं चाहे सौगंध खाकर भी अपने पति को कहूँ कि विवाह से पूर्व मैंने वासदेव से प्रेम अवश्य किया था मगर मेरे उससे कोई आनैतिक संबंध नहीं थे वह कभी भी मेरी बात पर विश्वास नहीं करेगा। वह सदा मुझे आशंका की दृष्टि से देखेगा और शायद मुझ से घृणा भी करने लग जाए। मैंने जो विश्वासघात उसके साथ किया है मैंने जान कर नहीं किया। मैं कल भी विवश थी, आज भी विवश हूँ। भगवान ऐसा खिलवाड़ मनुष्य के साथ क्यों करता है, मैं समझ नहीं पाई।'' सोचते साचते उसको नींद आ गई और जब उसकी नींद खुली उसे अकस्मात अपने बच्चे का ध्यान आया जिसे वह अपनी सास के पास छोड़ आई थी।

अंतर्ज्ञान

उन्नीस सौ सैंतालिस से पूर्व जब हिन्दुस्तान का बटवारा भारत और पाकिस्तान में नहीं हुआ था, छे सौ से अधिक रियास्तों में एक रियास्त बहावलपुर थी जिसका शासक नवाब कहलाता था। उस रियास्त में एक छोटा सा नगर था जिसका नाम रहीम यार ख़ान था। वहाँ मुसलमानों का बहुमत था। हिन्दु और सिख कोई तीस प्रतीशत में थे, जिसमें सिखों की मात्रा बहुत कम थी। उस समय बहुत से हिन्दु, सिखधर्म के पहले गुरू गुरूनानक को मानते थे। वहाँ हिन्दुओं और सिखों ने मिल कर एक गुरूद्वारा बनाया था जो प्रतापगंज के नाम से प्रसिद्ध था। गुरूद्वारा कोई एक हजार गज़ ज़मीन में बना हुआ था। उसके साथ दो कमरे ग्रंथी के रहने के लिए थे। एक बहुत बड़ा भंडार और रसोईघर भी था जो लंगर के समय प्रयोग में लाया जाता था। गुरूद्वारे के साथ लगी कोई एक एकड़ से अधिक ज़मीन थी जिसमें एक बाग़ था। उस बाग़ में अनार, आम, नारंगी और जामन के पेड़ लगे हुए थे। ऋतु अनुसार गाजर, मूली, गोभी, साग इत्यादी भी उगाए जाते थे। उनसे जो आय प्राप्त होती थी और दान मिलाकर गुरूद्वारे को चलाने और देखभाल पर व्यय होता था। हर संक्राती को श्रद्धालु इकट्ठे होते थे। ग्रंथ साहब का पाठ होता थाऔर अंत में अरदास पढ़ी जाती थी। उसके पश्चात सूजी के हलवे का प्रसाद बाँटा जाता था। कभी कभी विशेषकर बैसाखी पर लंगर भी चलता था जिसमें हर व्यक्ति को भोजन खिलाया जाता था। श्रद्धालु विशेषकर स्त्रियाँ मिलकर खाना बनाती थीं।

प्रतापगंज गुरूद्वारा की देखभाल कोई चालीस वर्ष का ग्रंथी करता था जिसका नाम प्रेम सिंघ था। वह अपनी पत्नी दर्शन कौर के साथ गुरूद्वारे से जुड़े कमरे में रहता था। वह ज्ञानी होने के अतिरिक्त एक रागी भी था। हार्मोनियम स्वयं बजाता था और बड़ी मधुर सुर में भजन गाता था। बहुत सीधा साधा व्यक्ति था। गुरूद्वारे का हर कार्य पूरी श्रद्धा तथा नियम अनुसार करता था। मगर वह नेत्रहीन था। ऐसा कुछ सुनने में आया था कि बचपन में चेंचक की बीमारी के कारण उसकी आँखें जाती रही थीं। उसे इसका कोई दुःख नहीं था। वह सदा यही कहता, ''जो वाहे गुरू की इच्छा।'' उसकी पत्नी उससे दस साल छोटी थी। रंग साँवला, कद प्रेमसिंघ जितना, चेहरा साफ़ और गोल था। स्वास्थ्य अच्छा था। उसकी छातियाँ उभरी हुई थीं जिसके कारण यदि गरमी में वह कोई सूदम कपड़ा पहने तो छातियों की चूचियों की गुलाई तथा उनका खड़ापन प्रतीत होता था। पुरानी रीति अनुसार सप्ताह में चार पाँच दिन वह ग्यारह से बारह के बीच साथ के घरों में रोटी सब्जी तथा फल लेने जाती थी जिससे उनके दोनो समय का भोजन होता था। उसमें कुछ वह रसूलमियां माली को दे देती थी और यदि बच जाए या अधिक मात्रा में हो तो पास के निर्धनों की बस्ती में बाँट आती थी या गुरूद्वारे में आए हुए भिकारियों को खिला देती थी।

जिन घरों में दर्शन जाती थी उन में से एक का मालिक सरदार मंजीत सिंघ था। उस समय उसकी आयु पचास के लगभग थी। वह रहीम यार ख़ान का माना हुआ ज़मीनदार था और उसके संबंध बहावलपुर के नवाब के साथ एक मित्र जैसे थे। काफ़ी चतुर था। मित्रता बनी रहे वह आए दिन नवाब के घर में खाने पीने की सामग्री विशेषकर सब्जी, फल तथा गेहुँ भिजवा देता

था। हर ईद पर नवाब साहब की बेगम साहिबा को बहुमूल्य उपहार भिजवाने में देर नहीं करता था और आवश्यकता पड़ने पर रियास्त के उच्च कर्मचारियों की मुट्ठी भी गरम करता रहता था। एक दोपहर जब दर्शन उसके घर रोटी सब्जी लेने के लिए गई तो वह घर पर था। अकस्मात उसकी दृष्टि दर्शन पर पड़ी तो उसका दिल मचल गया यद्यपि उसकी पत्नी इंदर कौर दर्शन से अधिक सुन्दर थी और तीन बच्चों की माँ होते हुए भी उसका स्वास्थ्य काम-इच्छा का पात्र था। अब मंजीत सिंघ दर्शन को देख कर मोहित क्यों हो गया यह शायद वह भी नहीं जानता था। जिस कामदेव ने अपना बाण चलाया था वह अपना काम कर के भाग गया। किसी ने मजनूँ को कहा, "तेरी लैला का रंग तो साँवला है मगर तू उसके पीछे पागलों के समान घूमता है।" मजनूँ ने उत्तर दिया," तू मेरी आँख से मेरी लैला को देख।" कुछ ऐसी ही अवस्था मंजीत सिंघ की थी।

जब पहली बार मंजीत ने दर्शन को घूर कर देखा तो वह कुछ घबराई और कुछ भरमाई। उसे अपने पति से किसी प्रकार का कोई अपवाद नहीं था। उसको केवल यह दुःख था कि उसका पति उसे देख नहीं सकता था और क्योंकि वह देख नहीं सकता था वह उसके सौंदर्य की प्रशंसा नहीं कर सकता था। वह एक निर्धन परिवार से आई थी। शायद इसीलिए उसके माता पिता ने उसका विवाह एक नेत्रहीन ग्रंथी से कर दिया था। अब मंजीत सिंघ जो अकसर प्रतिदिन घर से बाहर चला जाया करता था उसने अधिक समय घर बैठना आरंभ कर दिया विशेषकर उस समय जब दर्शन रोटी लेने के लिए आती थी। धीरे धीरे दर्शन को भी मंजीत में रूची होने लगी जिसके दो कारण हो सकते थे। एक तो यह, अब उसको एक प्रकार की तसल्ली हो गई कि आखिर कोई तो मिला

जिसने उसके सौंदर्य की पहचान की और दूसरा यह क्योंकि वह एक निर्धन परिवार से संबंध रखती थी मंजीत सिंघ के घर को चमकदार और उसके रहने सहने का ढंग देख कर उसका मन ललचा गया। मंजीत ने दर्शन की प्रवृत्ति को देखकर अनुचित समय पर गुरूद्वारे जाने लगा। इसमें कोई संदेह नहीं था कि दोनो ने मिलकर प्रेम सिंघ के अंधेपन का अनुचित लाभ उठाया। सरदारनी इंदर कौर और उसके बड़े लड़के अवतार सिंघ को कुछ भ्रम तो हुआ मगर जब तक कोई प्रमाण ना हो दोनो प्रेम सिंघ से कुछ कहते हुए डरते थे।

जब अंग्रेज़ी सरकार ने हिन्दुस्तान के बटवारे की घोषणा की तो सम्प्रदायिक झगड़े शुरू हो गए। यह झगड़े दिन प्रतिदिन बढ़ते गए जिसके कारण हिन्दुओं और सिखों को पाकिस्तान वाले हिस्सों को और कई मुसलमानों को भारत वाले भाग को छोड़ना पड़ा। जब बहावलपुर के नवाब ने यह घोषणा की वह पाकिस्तान में सम्मिलित होने जा रहा था तो वहाँ भी झगड़े शुरू हो गए। मंजीत सिंघ को यह घोषणा सुनते ही विश्वास हो गया कि अब वह भी जटिल स्थिति में था। नवाब साहब से किसी प्रकार की सहायता की आशा करना अब संभव नहीं था। उसने अपनी पत्नी और बच्चों को प्रामर्श दिया कि वे सब बठिंडा चले जाएँ जो स्वतंत्र भारत में था। वहाँ इंदर कौर के भाई का घर था। उसने कहा,'' अभी तो स्थिति इतनी नहीं बिगड़ी है। तुम सोना और धनराशि साथ ले जाओ । मैं ज़मीनों को बेच कर कुछ मास तक आ जाऊँगा।'' पहले तो वे नहीं माने मगर मंजीत के बार बार कहने पर उन्हें मानना ही पड़ा। एक दिन वे सब रेलगाड़ी में बैठ कर बठिंडा पहुँच गए।

मंजीत सिंघ के पीछे रह जाने के दो उद्देश्य थे - ज़मीनें और दर्शन कौर। अब दर्शन के साथ उसके संबंध वैसे हो गए जो एक पति पत्नी में होते हैं। किसी कारण दर्शन गर्भवति नहीं हो सकती थी। मंजीत सिंघ ने इसे अच्छा शगुन समझा। बच्चा होने से उसकी बदनामी तो होती ही साथ में व्यभिचार का आरोप भी लग सकता था। प्रेमसिंघ देख तो नहीं सकता था मगर वह जानता था कि उसकी पत्नी का चरित्र अनकूल था। उसने कई बार पूछा कि मंजीत सिंघ किसलिए यहाँ बार बार आता है मगर दर्शन ने सदा यही उत्तर दिया, " मैं क्या जानूँ । आप ही पूछ लीजिए।" क्योंकि प्रेमसिंघ को यह भी पता लग चुका था कि नब्बे प्रतिशत से अधिक हिन्दु और सिख रहीम यार ख़ान को छोड़ कर चले गए थे और जो रह गए थे वे भी जाने की तैयारी कर रहे थे या जाने के लिए सोच रहे थे, गुरूद्वारा अब केवल मंजीत सिंह के दान दया पर चल रहा था। शायद इसी कारण उसने मंजीत से कुछ कहना या कोई प्रश्न करना उचित नहीं समझा। जब एक व्यक्ति ने प्रेमसिंह से कहा,"ज्ञानी जी, जब सब लोग जा रहे हैं, आप यहाँ क्या करेंगे।" प्रेमसिंघ ने उसे उत्तर दिया," जिस वृक्ष का मैंने फल खाया है अब उस पर आपत्ति आ गई है मैं उसे छोड़ कर चला जाऊँ और कायर कहलवाऊँ। जब तक यह गुरूद्वारा है मैं यहीं रहूँगा चाहे मेरी जान क्यों ना चली जाए।"

तीन चार मास तक मंजीत और उसके परिवार में पत्र व्यवहार चलता रहा फिर दो देशों में साम्प्रदायिक झगड़े बढ़ने से डाक का क्रम बंद हो गया। इतनी देर में हालात और बिगड़ गए। एकदिन मंजीत ने दर्शन को कहा, " अब हम यहाँ और अधिक समय तक नहीं रह सकते। हमें यहाँ से जाना ही पड़ेगा। तुम मेरे साथ चलो।"

दर्शन ने कहा, "ज्ञानीजी का क्या होगा?"
"वह तो जाना नहीं चाहते।"
"मैं उनको छोड़ कर ...."
मंजीत ने बात काटते हुए कहा, "सारे रहीम यार ख़ान में एक तुम ही अकेली रह जाओगी। एक दिन कुछ मुसलमान तुम्हें उठा ले जाएँगे। पहिले वे तुम्हारा बलात्कार करेगें, फिर तुम्हें जान से मार देंगे।"
"मगर ज्ञानीजी को बताना तो पड़ेगा।"
"बताने की क्या आवश्यकता है। तुम जब नहीं होगी वह अपने आप समझ जाएँगे।"
योजना अनुसार वे दोनो रेलगाड़ी से मुलतान गए और वहाँ से हवाई जहाज़ द्वारा अमृतसर पहुँचे। कुछ समय किराये के मकान में रहने के पश्चात जब मंजीत सिंघ के क्लेम् का कार्य पूरा हो गया वे फ़िलोर चले गए जहाँ सरकार ने मंजीत सिंघ को रहीम यार ख़ान में छोड़ी हुई ज़मीन और मकान की क्षतिपूर्ति में नई ज़मीन और एक बहुत बड़ा मकान दिया। यदि कोई मंजीत से दर्शन के बारे में पूछता तो वह यही उत्तर देता कि वह उसकी पत्नी है। भारत में प्रवास करने के बाद उसने अपने परिवार से संपर्क करने की कोई चेष्टा नहीं की। इसी तरह दो वर्ष बीत गए। इंदर कौर ने यही समझा कि मंजीत सिंघ या तो साम्प्रदायिक झगड़ों में मारा गया या वह फिर मुसलमान बन गया।

एक दिन मंजीत रेलगाड़ी में किसी काम से अमृतसर जा रहा था। गाड़ी में उसकी भेंट रामचन्द नाम के एक व्यक्ति से हुई जो बटवारे से पूर्व रहीम यार ख़ान का रहने वाला था। उसे देखकर मंजीत ने अपना मुँह मोड़ लिया। मगर रामचन्द ने उसके संमुख आकर कहा, "सरदार जी, आप ने मुझे पहचाना नहीं।" मंजीत ने

सिर हिला कर नहीं में उत्तर दिया। रामचन्द ने फिर कहा, "आप सरदार मंजीत सिंघ है ना।" मंजीत ने फिर सिर हिला कर नहीं में उत्तर दिया। रामचन्द समझ गया कि वह उससे बात नहीं करना चाहता था । वह मंजीत के लड़के अवतार सिंघ को जानता था । घर पहुँच कर उसने अवतार को पत्र डाला मगर उसे यह जानकारी नहीं थी कि मंजीत कहाँ जा रहा था क्योंकि जब वह अपने स्टेशन पर उतरा तो मंजीत अभी गाड़ी में बैठा था।

अवतार सिंघ के लिए अपने पिता को ढूँढना इतना सरल नहीं था मगर कठिन भी नहीं था। उसने पुनर्वास विभाग से संपर्क किया और अपने पिता का पता लगा लिया। एक शाम वह अकेला फ़िलोर में अपने पिता के घर पहुँच गया। मंजीत सिंघ उस समय घर पर था। वह अपने बेटे से गले मिलकर रोया और भारत में प्रवास करने की सूचना उन्हें ना देने पर क्षमा माँगी। फिर मंजीत ने इंदर कौर और दूसरे बच्चों का मंगल कुशल पूछने के बाद उन्हें अवतार द्वारा फ़िलोर आने निमंत्रण दिया।

अवतार ने कहा वह घर जाकर अपनी माँ से बात करेगा और जो भी संदेशा होगा उसे मिल जाएगा। कुछ दिन बाद अवतार का पत्र आया जो दर्शन ने भी सुना। उसने पत्र में लिखा कि बीजी दर्शन के होते हुए आप के घर में कदम नहीं रखेंगी और ना ही आप से कोई बातचीत करेंगी। पत्र पढ़कर मंजीत और दर्शन दोनो को चिंता हुई। दोनो सोच में पड़ गए कि क्या किया जाए। जब वे किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सके तो दर्शन ने अपने आप निर्णय लिया और मंजीत को बिना बताए घर छोड़ कर चली गई। वह किसी अन्य व्यक्ति को नहीं जानती थी। रेलवे स्टेशन जाकर वह एक गाड़ी में बैठ गई और फगवाड़ा उतर गई जहाँ गाडी समाप्त होती थी। स्टेशन से बाहर निकल कर उसने वहाँ के गुरूद्वारे का पता

पूछा। गुरूद्वारे पहुँच कर वह उसके गेट के आगे खड़ी हो गई। एक भाई ने उसे जब देखा तो पूछा, " बीबी, क्या बात है? तुम यहाँ क्यों खड़ी हो।" दर्शन ने जब कोई उत्तर नहीं दिया तो भाई ने फिर कहा, " क्या तुम गुंगी हो?" उसने सिर हिला कर उसका उत्तर हाँ में दिया। उसे यह संकेत मिल गया कि यदि वह चुप रहे तो अच्छा होगा। दर्शन ने फिर भाई को इशारों में बताया कि वह अकेली थी और गुरूद्वारे में उसे शरण चाहिए थी। फिर उसने इशारों में कहा कि वह गुरूद्वारे में रहकर झाड़ू लगाएगी, बर्तन धोएगी और जो भी काम उसे दिया जाएगा वह उसे प्रसन्नता से करेगी। भाई ने कहा, "तुम मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें बड़े भाई जी से मिलवाता हूँ।"

जब वह दर्शन को अंदर बड़े भाई जी के पास ले गया वह उसे देखकर चकित रह गई। उसके संमुख प्रेमसिंघ बैठा था। उसे पसीना आ गया जिसे देखकर भाई ने कहा, "बीबी, घबराओ नहीं। संतजी महान व्यक्ति हैं।" फिर उसने सारी कथा प्रेमसिंघ को सुनाई। प्रेम सिंघ ने पूछा बीबी तुम्हारा नाम क्या है।" भाई ने उत्तर दिया, " संतजी, यह गुंगी है।"

"कोई तो नाम होगा इसका। कागज़ पर लिखवाकर पूछ लो।" प्रेमसिंघ ने कहा। दर्शन ने संकेत दिया कि वह अनपढ़ थी। भाई ने प्रेम सिंघ को बताया कि वह पढ़ना लिखना नहीं जानती थी। "कोई बात नहीं । हम इसे नया नाम दे देते हैं।" प्रेमसिंघ ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा, " अमृत कौर का नाम दे दो इसे। यह गुरू का द्वारा है। यहाँ कोई भी आ सकता है। इसे रख लो और एक कमरा दे दो इसके रहने के लिए।"

दर्शन अब गुरूद्वारा में रहने लगी। उसे कभी बहुत दुःख होता कि उसने प्रेमसिंघ के साथ विश्वासघात किया था और झूठ कहा था कि वह गुंगी थी। वह प्रेमसिंघ के लिए अच्छे भोजन बनाने

लगी। एक दिन उसने आलूमटर की सब्ज़ी बनाई जो प्रेम सिंघ को ऐसी लगी जैसे उसने रहीम यार ख़ान में दर्शन के हाथों की बनी हुई खाई थी। उसने भाई को कहा, ''अमृत कौर खाना बहुत अच्छा बनाती है। उसे यहाँ बुलाओ। मैं उससे पूछना चाहता हूँ कि ऐसा अच्छा खाना बनाना उसने कहाँ से सीखा।''

''मगर संतजी वह तो गुंगी है, '' शिष्य ने कहा।

''वह गुंगी नहीं है। वह बोलना नहीं चाहती।'' प्रेम सिंह ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा।

शिष्य को अंचभा हुआ मगर वह चुप रहा। उसने अमृत कौर को बुलाया । प्रेमसिंघ ने उसे बैठने को कहा और जब वह बैठ गई उसने उससे सीधा प्रश्न किया, '' तुम दर्शन कौर हो ना?''

दर्शन ने जान लिया कि प्रेम सिंघ को सत्य पता चल गया था। वैसे भी वह उस अवसर की खोज में थी कि वह उसे स्वयं सारी बात स्पष्ट बता दे। मगर वह डरती थी ना जाने क्या हो जाए। अगर उसे गुरूद्वारे से निकाल दिया गया तो वह कहाँ जाएगी और मंजीत सिंघ के घर वह वापिस नहीं जाना चाहती थी। उसने धीरे से उत्तर दिया, ' हाँ मैं दर्शन हूँ।'' फिर वह प्रेमसिंघ के पाँव पड़ गई और ज़ोर ज़ोर से रोते हुए कहा, '' मैं पापिन हूँ । मैंने आपके साथ विश्वासघात किया । मुझे इसका दंड मिलना चाहिए। मुझे क्षमा कर दीजिए।''

''क्षमा मुझ से नहीं बाबा नानक से माँगो । दस गुरूों से मांगो। अपने करतार से माँगो जो हमारा जन्मदाता है, जो हमारी देखभाल करता है और जो हमारे कष्ट निवारता है।'' प्रेमसिंघ ने अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करते हुए धैर्य से कहा।

''मैं पापिन हूँ। मुझे अवश्य दंड मिलना चाहिए, । '' दर्शन ने रोते हुए फिर कहा।

''पाप पुण्य क्या है यह वाहेगुरू ही जानता है। उसकी जो इच्छा होती है वही हो कर रहता है।'' थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रेमसिंघ ने कहा, ''तुम यहाँ रह सकती हो परन्तु मेरी पत्नी बन कर नहीं। वह एक पवित्र संबंध था जो सदा के लिए टूट चुका है।''

इतना कहने के पश्चात प्रेमसिंघ उठ कर चला गया। दर्शन उस दुःख को सहन ना कर सकी। एक प्रातः काल वह गुरूद्वारे को छोड़ कर चली गई। कहाँ गई किसी को कुछ कह कर नहीं गई और ना ही उसका काफ़ी समय तक कोई पता चला।

एक मास के पश्चात मंजीत सिंघ उसे ढूँढते ढूँढते गुरूद्वारे आ गया और जब वह नहीं मिली और ना ही उसका कोई संकेत मिला वह निराश हो कर वापिस अपने घर चला गया। उसने दर्शन को और अधिक ढ़ँढने का कोई प्रयास नहीं किया।

* * * * * * * * * * *

बड़ा कौन

जैसे कोई भी उद्योगपति अपने क्षेत्र में कितना भी स्थिर और सफल क्यों ना हो उसे सदा यही चिंता रहती है कि उसके कारखानों से निकले हुए माल की बिक्री कभी कम नहीं होनी चाहिए बल्कि उसमें सुधार आना चाहिए, ठीक उसी प्रकार हर समाचार पत्र के चालक को सदा यही धुन रहती है कि उसके समाचार पत्र की बिक्री की संख्या बढ़नी चाहिए और जैसे उद्योगपति किसी नये निर्माण की खोज में रहता है उसी प्रकार समाचार पत्र का संपादक सदा नई सामग्री की खोज में रहता है। ऐसी ही कथा मुंबई से निकलने वाले दैनिक समाचार पत्र "विशाल भारत" की थी। उसका सम्पादक राम गोपाल शिंडे बुद्धिमान और दूरदूर्शी तो था ही साथ में चतुर भी था। तभी तो पिछले बीस वर्ष से अपने स्थान पर टिका हुआ था। कोई ना कोई गरम मसाला अपने संवाददाताओं द्वारा ढूंढ लेता था। कुछ उसमें रंग डालता और कुछ मिलावट भी करता था चाहे वह खाने पीने की वस्तुओं में मिलावट का कड़ा विरोध करता था। फिर किसी सुन्दर पैकिंग वाले पदार्थ के समान उसे कई रंगों में छापता था। दफ़तर में कुर्सी पर बैठे किसी ना किसी वस्तु या व्यक्ति का रेखाचित्र बनाता रहता था। जो सामग्री वह जनता के आगे रखता था वह उसे पचा सकेगी या नहीं उसे इससे कोई लेना देना नहीं था। उसे तो किसी ना किसी योजना अनुसार अपने समाचार पत्र की बिक्री को बढ़ाना था।

किसी समय की बात है फ्रांस में एक व्यक्ति ने एक मासिक पत्रिका निकाली जो चली नहीं। उसे तब एक प्रक्रिया सूझी जिसके अनुसार उसने एक और मासिक पत्रिका निकाली। जो एक पत्रिका में छापता दूसरी पत्रिका में उसकी निंदा होती थी। एक प्रकार से दोनो में सदा झड़प सी रहती थी। लोगों को पढ़ने में बड़ा आनंद मिलता था। कहाँ एक नहीं बिकती थी अब दोनो बिकने लगीं। किसी गंभीर स्वभाव वाले और प्रतिष्ठावान व्यक्ति को दोनो पत्रिकाओं के बीच गाली गलोच, एक दूसरे पर कीचड़ उछालना और वाक् कलह अच्छा नहीं लगा। दोनो दलों में समझोता करवाने के शुद्ध विचार से उसने एक पत्र लिखकर दोनो पत्रिकाओं के सम्पादकों को एक ही समय पर अपने निवास स्थान पर बुलाया। जब दूसरा सम्पादक नहीं आया उसे फ़ोन करने के लिए जब वह अपनी कुर्सी से उठने लगा तो उपस्थित सम्पादक ने कहा, '' वह नहीं आएगा।'' उस भले व्यक्ति ने उसके ना आने का कारण पूछा तो संपादक ने उत्तर दिया, '' दूसरा सम्पादक भी मैं ही हूँ।''

एक दिन शिंडे ने अपने विशेष संवाददाता निखलकुमार शोरी को अपने कमरे में बुला कर कहा, ''मुझे एक नया विषय सूझा है। कई अन्य देशों मे विशेषक़र अमेरिका और इंगलैंड में ऐसा होता है मगर भारत में आजतक नहीं हुआ।''

''वह क्या है?'' शोरी ने अभिरूचि लेते हुए पूछा।

''मैं चाहता हूँ कि भारत के दस सार्वाधिक धनी व्यक्तियों की सूची बनाई जाए जिसके साथ हम उन सफल व्यक्तियों की सफलता का विवरण भी देंगे। उसे हम रविवारीय सुचित्र परिशिष्ट में छापेंगे?''

''आप ने जो विषय चुना है वह ना केवल रोमांचक है, इसके साथ सूचनात्मक भी है।'' शोरी ने अपने बॉस की प्रशंसा करते हुए कहा।

'' परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। जो सामग्री हम इकट्ठा करें वह जहां तक संभव है यथोचित होनी चाहिए। इस के लिए हमें बैंकों, आय कर विभाग और कई अन्य संस्थाओं से संपर्क करना पड़ेगा। परन्तु एक बार जब सूची बन गई तो हर वर्ष उसे हम छापेंगे क्योंकि जो व्यक्ति आज प्रथम स्थान पर है अवश्य नहीं अगले वर्ष वह उसी स्थान पर रहेगा। एक बार हमने बेलचा से ज़मीन खोद दी तो अगली बार उसी ज़मीन को खोदने के लिए अधिक पसीना नहीं बहाना पड़ेगा। क्या विचार है तुम्हारा?' शिंडे ने मुस्कराते हुए पूछा।

शिंडें को अपने हर प्रस्ताव पर गर्व था। सफल व्यक्ति में अहंभाव और भी अधिक होता है। शोरी ने तो हाँ में हाँ मिलानी ही थी और बिना किसी संकोच के तुरंत मिला दी।

सामग्री जोड़ने में बहुत समय लग गया। जब सूची तैयार हो गई तो उसमें अपेक्षा अनुसार छे तो उद्योगपति थे जिन में दो का स्थान पहला और दूसरा था। वे थे हरिवंश कुमार गलोटिया और केशव भाई जावेरी। इन दोनो की सम्पत्तियों को जोड़ा जाए तो लगभग शेष आठ की सम्पत्तियों के जोड़ के तुल्य थी। उस सूची में चलचित्र जगत की प्रसिद्ध अभिनेत्री प्रतिभा दत्त के अतिरिक्त क्रिकेट खिलाड़ी आकाश पटेल और भवन निर्माता माखन लाल भी थे। यह सूची संपादक की टिप्पणी के साथ स्वतंत्रा दिवस के अवसर पर निकाले हुए संस्करण में छापी गई। इसे पढ़कर पाठकों को बड़ा आन्नद आया और उद्योग क्षेत्र में तो इसकी बड़ी चर्चा हुई। परन्तु अभिनेत्री प्रतिभा दत्त और भवन निर्माता माखन लाल

को थोड़ी चिंता हुई कहीं आयकर विभाग वाले उन से पूछताछ ना करें क्योंकि वे बहुत कम आयकर देते थे।

वास्तविक आमना सामना तो गलोटिया और जावेरी में था। जब तक वह सूची जनता के सामने नहीं आई थी जावेरी को यही विश्वास था कि वह ही भारत का सर्वधनी था। गलोटिया का नाम प्रथम स्थान पर देख कर वह सटपटाया। उसने शिंडे को टैलीफ़ोन पर कहा, " यह कैसे हो सकता है? " शिंडे ने उत्तर दिया, " आंकड़े तो यही बता रहे हैं कि हरिवंश .... " अभी उसने बात पूरी नहीं की थी कि क्रोध में आकर जावेरी ने फ़ोन रख दिया। जावेरी के कई कारख़ाने थे जिन में नमक से लेकर फ़ौलाद तक बनता था। सब भारतवासी उसके व्यापारिक चिंह से परिचित थे । मुम्बई में पॉंच हजार ग़ज में बना हुआ उसका भवन था जहॉं वह अपनी पत्नी राजेश्वरी , पुत्र तथा बहू और कंवारी पुत्री भंसाली के साथ रहता था। दास और दासियों की कोई गिनती नहीं थी।

हरिवंश गलोटिया भी एक सफल उद्योगपति था। वह चैन्नई में अपनी पत्नी कलावती, पुत्र रविकांत और पुत्री सुनाली के साथ रहता था। उसका अधिक व्यापार आयात निर्यात का था। न्यूयार्क, लंडन, टोकियो और सिंगापुर में उसने दफ़तर खोल रखे थे। जब उसने अपना नाम प्रथम स्थान पर देखा तो वह उछल पड़ा। वह धनी तो था ही मगर उसे यह ज्ञान नहीं था कि वह भारत का सबसे उच्च धनवान था। ऐसा होना उसके लिए गर्व की बात थी। प्रथम स्थान पर होना इस बात का संकेत था कि वह एक चतुर तथा निपुण व्यापारी है। सूची के छपते ही उसकी कम्पनियों के स्कंध के दाम एकाएक ऊपर उठ गए जिसका जावेरी को दुःख हुआ क्योंकि वह गलोटिया का प्रतिस्पर्धा था। उसने प्रण किया कि

अगले वर्ष की सूची में उसका नाम सबसे ऊपर आएगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। फिर भी उसने अपना धैर्य तथा उत्साह नहीं खोया।

तीसरे वर्ष जब जावेरी का नाम प्रथम स्थान पर आया तो उसके आन्नद की कोई सीमा ना रही। उसके लिए यह परिवर्तन इतना मनोरम था जैसे उसने शत्रु के दुर्ग पर आक्रमण करके उसपर अपना अधिकार जमा लिया हो। इसके विपरित गलोटिया के चेहरे का रंग ऐसे उड़ गया जैसे उसका दिवाला निकल गया हो। जितनी तीव्र गति से उसकी कम्पनियों के शेयर ऊपर उछले थे उसी गति से धड़म से नीचे गिर गए। यह उसके लिए चिंता का विषय बन गया। यूँ कहिए उसकी हृदय गति रूकते रूकते रह गई। उसने प्रतिज्ञा की कुछ भी हो जाए अगले वर्ष वह फिर अपने स्थान पर पहुँच जाएगा जिस के लिए उसे अधिक सम्पत्ति दिखानी पड़ेगी। माल की बिक्रय बढ़ाना और अधिक लाभ दिखाना उसके हाथ में नहीं था। हो भी सकता था और नहीं भी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था। वह कोई जोखिम भी नहीं उठाना चाहता था। वह एक काम कर सकता था जो उसने किया। वह अपने खर्चों में कटौती कर के अपनी वास्तविक सम्पत्ति में वृद्धि कर सकता था। उसने तुरंत अपनी सभी कम्पनियों के प्रबंधक संचालकों की एक संकट काल बैठक बुलाई और उन्हें व्यय में भारी कटौती करने का आदेश दिया। व्यय को कम करने के लिए कई पग उठाए गए जैसे दिवाली लाभअंश में कटौती, नई भर्ती पर प्रतिबंध, विज्ञापन में कटौती और कई प्रकार के भत्ते कम कर दिए या बंद कर दिए गए। जब वर्ष समाप्त होने में दो मास रह गए थे एक ऐसी घटना हुई जिसने एक बार तो गलोटिया को हिला कर रख दिया।

गलोटिया की पत्नी कलावति एकाएक गंभीर रूप से बीमार पड़ गई और उसे अस्पताल भरती करवाना पड़ा। कई दिन की जाँच पड़ताल के पश्चात जब प्रसिद्ध डॉक्टरों ने गलोटिया को यह बताया कि कलावति को छाती का कैंसर था तो उसके पाँव तले की ज़मीन सरक गई । डॉक्टरों ने यह मंत्रणा दिया यदि ऑप्रेशन शीघ्र ना कराया गया तो कैंसर फैल जाने का भय था और एक बार फैलना आंरभ हो गया तो रोगी की जान बचाना लगभग अंसभव होगा। उन्होंने यह भी कहा कि सफल शल्यकर्म के लिए उसे यदि अमेरिका या इंगलैंड के किसी अच्छे अस्पताल में रखा जाए तो अति लाभदायक सिद्ध हो सकता था। गलोटिया ने अपने निजि परामर्शदाता रविकांत वर्मा को बुलाया और उससे पूछा, " यदि कलावति को चिकित्सा के लिए अमेरिका भेजा जाए तो कितना खर्च होगा।"

"मैंने पूछताछ की है। मैडम के साथ चार पाँच व्यक्ति तो जाएँगे ही। हवाई जहाज़ से आने जाने का किराया, अस्पताल का व्यय और अन्य व्यक्तियों के रहने तथा खाने पीने का खर्चा मिला कर कम से कम पचास लाख होगा। यदि एक मास से ऊपर रहना पड़ा तो व्यय और भी अधिक हो सकता है। आप सत्तर अस्सी का हिसाब रखिए।" वर्मा ने उत्तर दिया।

"क्या यह सारा व्यय एक साथ करना पड़ेगा?" गलोटिया ने मुँह लटका कर पूछा।

"वह तो निश्चित है। अगर शल्यकर्म भारत में होता तो हम सारा भुगतान अगले वर्ष तक रोक सकते थे परन्तु विदेश में तो अस्पताल के चालक पेशगी मांगते हैं।"

"क्या हम शल्य कर्म को अगले वर्ष के आंरभ तक स्थगित नहीं कर सकते?" गलोटिया ने अनुचित प्रश्न किया जब कि वह जानता था कि देर करने में रोगी की जान को त्रास था।

रविकांत को समझ नहीं आ रहा था वह क्या उत्तर दे। वह चुप रहा। गलोटिया ने फिर कहा, " देखो रविकांत , एक बात मैं स्पष्ट किए देता हूँ। अगले वर्ष सर्वधनियों की सूची में मेरा नाम सबसे ऊपर होना चाहिए। यह मेरे सम्मान का प्रश्न है। और फिर तुम जानते हो इस वर्ष मेरा नाम दूसरे स्थान पर होने से हमें कितनी हानि हुई। हमारी कम्पनियों के शेयरज़ का दाम एकदम गिर गया और मेरी साख को इतना बड़ा धक्का लगा।"

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात गलोटिया ने फिर कहा, " सारा संसार जानता है कि कैंसर के रोगी का कितना भी इलाज करवा लो वह बच नहीं सकता। एक प्रकार से सारा व्यय व्यर्थ ही जाएगा। मैं किसी भी स्थिति में इस वर्ष इतना खर्च नहीं कर सकता।"

वर्मा पच्चीस वर्ष से गलोटिया के पास काम कर रहा था। अपने मालिक के ऐसे विचार सुनकर उसे आश्चर्य तो हुआ ही उसके साथ अति दुःख भी हुआ। परन्तु उसने अपनी लम्बी नौकरी में मालिक की हॉं में हॉं मिलाना ही सीखा था और अब भी बिना कुछ और कहे हॉं में हॉं मिलाई। कलावति का शल्यकर्म अगले वर्ष के लिए स्थगित कर दिया गया।

जहां गलोटिया को यह चिंता खाए जा रही थी कि अगले वर्ष की सूची में उसका नाम प्रथम स्थान पर होना चाहिए, जावेरी को यह चिंता खाए जा रही थी कि अगले वर्ष उसका नाम प्रथम स्थान पर स्थिर रहना चाहिए। उसने भी लगभग वही कदम उठाए जो गलोटिया ने उठाए थे। उसने भी अपनी सभी कम्पनियों के

प्रबंधक संचालकों की एक संकट काल बैठक बुलाई और व्यय में भारी कटौती करने के लिए उन्हें आदेश दिया। प्रथम स्थान से नीचे आना उसके लिए मरण समान था। जब वर्ष में दो मास रह गए उसके साथ भी एक ऐसी घटना हुई जिसने उसे हिला कर रख दिया। समस्या बड़ी गंभीर थी। जावेरी की इकलौती पुत्री भंसाली विकास नाम के एक लड़के से प्रेम करती थी। जब जावेरी को इसकी भनक पड़ी तो उसने भंसाली का विवाह किसी और लड़के से करने की योजना बनाई क्योंकि विकास का पिता जवाला प्रसाद एक सामान्य व्यक्ति था। उसका कपड़े की थैलियां बनाने का एक छोटा सा कारख़ाना था और अपने निवास स्थान के अतिरिक्त उसकी और कोई पूंजी नहीं थी। कहां राजा भोज कहां गंगू तेली वाली बात थी। जब भंसाली को पता चला तो उसने अपने पिता को स्पष्ट शब्दों में कहा, " मैं विवाह करूँगी तो विकास से। यदि आपने मेरा विवाह किसी और से करने का प्रयास किया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। " जावेरी जानता था उसकी लड़की बड़ी हठी थी। उसे अपनी लड़की के आगे झुकना पड़ा। उसने जवाला प्रसाद से बात की वह झट से मान गया। वह वास्तव में बड़ा कायाँ आदमी था। उसने हाँ तो कर दी मगर यह प्रतिबंध लगाया कि जावेरी को दहेज में पचास लाख रूपये की राशि देनी पड़ेगी। जावेरी के लिए यह राशि कोई बड़ी बात नहीं थी। वह मान गया परन्तु उसने कहा कि विवाह अगले वर्ष के आंरभ में होगा। चालू वर्ष में विवाह पर इतना खर्च करने से उसकी वास्तव सम्पत्ति कम हो जाएगी जो उसे किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं था। जवाला प्रसाद को विवाह अगले वर्ष के आरंभ तक स्थगित करने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं दी, वह मान गया परन्तु उसने जावेरी को यह

कहा, " यह बात आप और मुझ तक सीमित रहनी चाहिए। इसका ज्ञान ना विकास को होना चाहिए और ना ही भंसाली को।"

विकास एक विवेकी लड़का था । पढ़ाई में अति निपुण था। दो बार उसका चित्र समाचार पत्रों में भी छप चुका था। अपनी आयु की तुलना में वह कहीं अधिक बुद्धिमान था । जवाला प्रसाद ने सोचा जब इतना धन मिलने की संभावना है क्यों ना विकास को उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड भेजा जाए। जब विकास ने पूछा, "इतना धन कहाँ से आएगा?" तो जवाला ने उत्तर दिया, " तुम इसकी चिंता मत करो। मैं सारा प्रबंध कर लूँगा।" सौभाग्य से विकास का प्रवेश लंदन के एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में हो गया परन्तु उन्होंने उसे पंद्रह दिन के अंदर फ़ीस जमा करवाने के लिए कहा। जवाला प्रसाद सीधा जावेरी के पास गया और उसे सारी कहानी बताई। जावेरी ने कहा, " मगर विवाह से पूर्व वह कैसे जा सकता है?" जवाला प्रसाद ने उत्तर दिया, " मैं भी यही चाहता हूँ कि विकास का विवाह उसके इंगलैंड जाने से पूर्व हो जाए ताकि भंसाली भी उसके साथ चली जाए।" जवाला जानता था कि जब तक विकास का विवाह भंसाली से नहीं हो जाता उसे पचास लाख की राशि नहीं मिल सकती। परन्तु यह प्रस्ताव जावेरी के लिए विष खाने के समान था। स्थिति कैसी भी क्यों ना हो चालू वर्ष में इतना खर्च करना संभव नहीं था। उसने जवाला प्रसाद को यह कह कर टाल दिया कि वह विवाह का प्रबंध इतनी शीघ्रता से नहीं कर सकता था।

क्योंकि उसकी योग्यता के कारण कई अन्य परिवार विकास को जानते थे, जवाला प्रसाद के पास एक नया सुझाव आया जो निशाने पर ठीक बैठा। पहले तो विकास नहीं माना। उसने कहा, " ऐसा नहीं हो सकता। मैंने भंसाली को वचन दे

रखा है कि मैं विवाह उसी से ही करूँगा।'' पिता के बार बार कहने और समझाने पर कि ऐसा अवसर एक बार हाथ से निकल गया तो दोबारा नहीं आएगा वह सहमत हो गया। विकास ने भंसाली को यह कहा, '' मैं अगले वर्ष के आरंभ में छुट्टी लेकर आऊँगा और तुम्हारे साथ विवाह करके तुम्हें साथ ले जाऊँगा। यह मेरा वचन रहा।'' भंसाली विकास की बातों में आ गई। विकास ने चुपके से संगीता से विवाह कर लिया और उसे साथ लेकर इंगलैंड चला गया। जाने से पूर्व विकास ने भंसाली को कहा था कि वह लंदन पहुँचकर उसे फ़ोन करेगा परन्तु जब पंद्रह दिन तक उसका फ़ोन नहीं आया तो उसे चिंता हुई। वह विकास के घर उसका फ़ोन नम्बर लेने आई। जवाला प्रसाद ने विकास के विवाह की बात छिपाना उचित नहीं समझा। उसने सोचा एक ना एक दिन तो उसे पता लग ही जाएगा मैं क्यों व्यर्थ में झूठ बोलूँ। विकास के विवाह की बात सुनकर भंसाली का सिर चकरा गया। उसने कहा, '' आप झूठ कह रहे हैं। ऐसा नहीं हो सकता। विकास ने मुझ से विवाह करने का वचन दिया था। आप मुझे उसका फ़ोन नम्बर दीजिए। मैं स्वयं उससे बात करूँगी। '' जवाला प्रसाद ने कहा, '' देखो बेटी, जो भाग्य में लिखा होता है वह होकर ही रहता है। अब तुम विकास से फ़ोन पर बात करके उसके विवाहित जीवन में अशाँति मत पैदा करो।''

भंसाली ने प्रयत्न करके कहीं से विकास का फ़ोन नम्बर ले लिया और उसे फ़ोन किया ।फ़ोन संगीता ने उठाया। भंसाली ने पूछा, '' आप कौन है?''

'' मैं विकास की पत्नी हूँ।'' संगीता ने सीधा उत्तर दिया।

'' क्या मैं विकास से बात कर सकती हूँ?''

"वह इस समय घर पर नहीं हैं। आप आपना नम्बर दे दीजिए मैं उन्हें बता दूँगी कि आप का फ़ोन आया था।" भंसाली ने अपना फ़ोन नम्बर संगीता को दे दिया मगर जब एक सप्ताह तक विकास ने फ़ोन नहीं किया तो वह समझ गई कि वह उससे बात नहीं करना चाहता था। उसने फिर एक बार फ़ोन किया। इस बार विकास ने फ़ोन उठाया। उसने कहा, " भंसाली , जब मैं वापिस भारत आऊँगा तुम्हें सारी बात समझा दूँगा। पूरी बात फ़ोन पर बताना संभव नहीं है।" इतना कहने के पश्चात उसने फ़ोन रख दिया।

जिस दिन 'विशाल भारत' समाचार के रविवारीय सुचित्र संस्करण में भारत के दस सर्वधनी व्यक्तियों की अगली सूची छपी उसी दिन हरिवंश कुमार गलोडिया की पप्नी कलावती गलोटिया की कैंसर से मृत्यु हो गई और उसी दिन ही केशव भाई जावेरी की इकलौती पुत्री भंसाली जावेरी ने अपने प्रेमी विकास के परित्याग के अनुताप के कारण आत्महत्या कर ली। परन्तु इन दोनो दुर्घटनाओं के साथ जुड़ी चिंता संबंधी घटना यह थी कि सूची में ना तो गलोटिया का नाम प्रथम स्थान पर था और ना ही जावेरी का। दोनो लुढ़क कर चौथे स्थान पर कोष्ठक हो गए थे।

* * * * * * * *

मन का मेल

फगवाड़ा में सेठ करमचन्द का ऊनी कपड़ा बनाने का बहुत बड़ा कारखाना था। एक सौ से अधिक कामगार थे। अच्छा कारोबार था। कोई वर्ष ऐसा नहीं था कि मुनाफ़ा ना हुआ हो चाहे थोड़ा या ज्यादा। वह एक सफल उद्योगपति माने जाते थे। भारत का कोई बड़ा नगर नहीं था जहाँ उनका माल ना जाता हो। उनके कारख़ाने से निकला हुआ कपड़ा ना केवल अच्छी किस्म का था साथ साथ प्रतिस्पर्धा भी था। उनकी सफलता के कई कारण बताए जाते थे। वह दूरदर्शी तथा समझदार तो थे ही, उसके साथ वह अपने कामगारों का बहुत ख्याल रखते थे। वेतन तो पूरा देते ही थे, उसके अतिरिक्त दीवाली पर बोनस, स्वास्थय सहायता, मकान बनाने के लिए और बच्चों को ऊँची शिक्षा के लिए बैंक से कम ब्याज पर ऋण भी देते थे। सरकारी नियम जो कामगारों के हित के लिए बनाये गये थे उनको पूर्णरूप से लागू करते थे।

बीस वर्ष की आयु में विवाह हो गया था। पाँच बच्चे थे। सबसे बड़ी लड़की का विवाह हो चुका था। बड़ा लड़का कॉलिज में पढ़ता था। बाकी के तीन स्कूल जाते थे। रहने के लिए बहुत बड़ी कोठी थी। उसके अतिरक्त एक अच्छा ख़ासा अतिथिग्रह था जहाँ कभी कभी पार्टियां होती थीं । दावत में उद्योग मंत्री, ऊँची पदवि वाले सरकारी अधिकरी इत्यादी को निमन्त्रण देने से नहीं चूकते थे। चाहे स्वयं शराब को छूते तक भी नहीं थे मगर अतिथियों को खुले दिल से पिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। चाहे स्वंय मास नहीं खाते थे मगर बढ़िया किस्म के सीख़ कबाब दावत में रखे

जाते थे। तम्बाकू से घृणा करते थे। वैसे तो देखने में स्वस्थ लगते थे परन्तु दमा के पुराने रोगी थे। कई इलाज कर चुके थे मगर कोई दवाई लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। कुछ शिकायत गुर्दे की भी थी।

जहाँ उनमें इतने गुण थे कुछ त्रुटियाँ भी थीं। क्रोध कम करते थे परन्तु एक बार क्रोध की पकड़ में आ गए तो उससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता था। एक दफ़ा उन्होंने क्रोध में आकर किसी कामगार को इतने ज़ोर से पीटा कि प्रसंग पुलिस में चला गया। काफ़ी दाम देकर जान छुड़ानी पड़ी। उनकी सफलता का विशेष कारण जो लोग नहीं जानते थे वह था कारखाने के खातों पर कड़ी दृष्टि रखना। चाहे चार्टड अकाउँटेंट के अतिरिक्त और भी लेखा रखनेवाले थे वह खातों का सुक्ष्म परिक्षण हर सप्ताह नियम अनुसार स्वयं करते थे विशेषकर आयकर रिटर्न तो अपने सामने भरवाते थे चाहे रात को देर तक क्यों न बैठना पड़े।

एक रात रिटर्न भरने के चक्कर में काफ़ी देर हो गई। कोई बारह बज चुके थे यद्यपि वह दस बजे के बाद बैठना पंसद नहीं करते थे। जब काम समाप्त हो गया उन्हें ध्यान आया चार्टड अकाउँटेंट आत्माराम को रास्ते में उसके घर छोड़ दें चाहे तीन मील का गुलावा था। जब शोफर ने आत्माराम के घर के आगे गाड़ी रोकी आत्माराम की पत्नी दरवाज़े के बाहर खड़ी शायद उसकी राह देख रही थी। सेठ जी की नज़र जब उस पर पड़ी तो वह क्षण भर के लिए अपनी सुध खो बैठे। वह चाहते थे उसे दोबारा देखें परन्तु नैतिक दृष्टि से उन्हें ऐसा करना अच्छा नहीं लगा और अपनी आँखें मोड़ लीं। रात को उन्हें ठीक प्रकार से नींद नहीं आई यद्यपि वह काफ़ी थक चुके थे।

औरत उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। किसी सुन्दर नारी पर उनकी एक बार दृष्टि पड़ जाए उनका दिल मचल उठता था। धन तो था ही । कहीं न कहीं से मनोरंजन का साधन निकल आता था। अतिथिग्रह के होते हुए उन्हें कहीं और नहीं जाना पड़ता था । उन्होंने आत्माराम की पत्नी को चाहे कुछ ही सेकण्ड के लिए देखा था वह जल्दी भाँप गए कि वह सुन्दर थी और उनके पंसद अनुकूल थी। ना तो वह पतली थी और ना ही मोटी। दूसरे शब्दों में अच्छा स्वास्थय था। गोल मुँह, गोरा रंग, नकश नैन तीखे और कद उचित था। उन्हें बड़ी आयु वाली औरतें पंसद थीं क्योंकि छोटी आयु वाली कुछ झिझकती थीं। बड़ी आयु वाली को वह घिस्सा पिट्टा समझते थे। अब वह आत्माराम की पत्नी शीला से मिलने के लिए बड़े इच्छुक थे मगर कैसे मिला जाए सोचने की बात थी और वह बात ऐसी थी किसी से परामर्श नहीं कर सकते थे।

कुछ दिन सेठ करमचन्द सोचते रहे। फिर एक दिन उन्हे ख़्याल आया क्यों ना अगली पार्टी पर मनैजर, फ़ोरमैन, अकाउँटेंट इत्यादि को उनकी पत्नीयों के साथ बुलाया जाए। शीला से मिलने और थोड़ी सी बातचीत करने का अवसर इससे और अधिक उपयोगी नहीं हो सकता था। उन्होंने ऐसे ही किया और जब शीला सजधज कर पार्टी में आई उनकी आँखें चकाचौंध हो गई। उनका संबंध कई स्त्रियों से पड़ा था मगर शीला जैसी सुन्दर स्त्री उन्होंने पहिले कभी नहीं देखी थी। दो बच्चों की माँ होते हुए भी वह किसी कुमारी समान नवीन लगती थी। अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए उन्होंने उससे अधिक समय तक बात करना उचित नहीं समझा। वह नहीं चाहते थे दूसरे उपस्थित

लोग जो उनके नीचे काम करते थे उनकी लम्बी बात का अनुचित अर्थ निकालें।

करमचन्द को मन ही मन में यह स्वीकार करना पड़ा कि शायद उन्हें शीला से प्यार हो गया था। कॉलेज के दिनों में उनका एक लड़की से प्यार हुआ था मगर पिताजी की एकाएक मृत्यु के कारण उन्हें कॉलिज छोड़ना पड़ा। वह अपने काम में जुट गए और शीघ्र अपनी माँ के कहने पर विवाह कर लिया। उन को अब ऐसा लगा कॉलिज की वह लड़की जिसका नाम माधवी था उनके जीवन में फिर आ गई थी। माधवी से शीला की तुलना कर के उन्होंने दबी हुई चिंगारी को स्वयं फूँक मार का भड़का दिया। तृष्णा बढ़ती गई। वह उदास रहने लगे। पहली बार उनके चेहरे पर उदासीनता देखकर उनकी पत्नी, बच्चों, मित्रों तथा कारखाने के कुछ कार्यकरताओं को आश्चर्य हुआ। पूछने पर टालने के अतिरिक्त और क्या कर सकते थे।

अब यों समझो जैसे शीला ने सेठजी के ऊपर कोई जादू कर दिया हो। वह शीला को अपने मस्तिष्क से नहीं निकाल सके मगर वह उसे इस प्रकार से प्राप्त करना चाहते थे कि कोई अशान्ति, अपने घर या कारखाने में या आत्माराम के घर में, ना हो। काफ़ी सोच विचार के बाद उन्होंने एक प्रक्रिया सूझी। उन्होंने एक दिन आत्माराम को अपने दफ़तर में बुलाया और यह कहा, "आत्माराम, मैं तुम्हारे काम से अति प्रसन्न हूँ। मैं चाहता हूँ तुम मेरे घर का भी खाता देखो। मगर मैं चाहता हूँ यह कार्य तुम यहाँ दफ़तर में मत करो। मेरी कोठी पर आ कर करो। सप्ताह में छुट्टी वाले दिन और शाम को दो तीन घंटे लगाओ तो ठीक रहेगा। मैं तुम्हारा वेतन बढ़ा दूंगा। तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं?" आत्माराम को क्या आपत्ति हो सकती थी। सेठजी के मन में क्या था वह कैसे

जान सकता था। उसने तुरंत उत्तर दिया, " यह तो मेरे लिए हर्ष की बात है। आप मुझ पर इतना भरोसा करते हैं। आप जब कहें मैं आ जाऊँगा।" जब वह उठ कर जाने लगा तो सेठ जी ने कहा, " जिस मकान में तुम रहते हो वह तुम्हारा अपना है या किराए का?" आत्माराम ने जब बताया कि मकान किराए का था उन्होंने कहा, " क्योंकि तुम्हारा घर मेरी कोठी से दूर है, तुम्हारा काफ़ी समय आने जाने में लग जाएगा। तुम कोई मकान मेरी कोठी के निकट ढूँढलो। यदि किराया अधिक होगा तो मैं अंतर पूरा कर दूँगा।" जब आत्माराम ने यह बात शीला को बताई तो वह भी प्रसन्न हुई। उन दोनो को यह ख्याल नहीं आया कि सेठ जी एकाएक इतने दयालु क्यों हो गए थे। उनको सेठजी की ओर से ऐसा कोई संकेत भी नहीं मिला था जिससे यह सिद्ध हो कि वह शीला को अपने बस में करने के लिए कोई चाल चल रहे थे। पंद्रह दिन मे उन्होंने मकान बदल लिया और आत्माराम ने सेठ जी की कोठी पर शाम को काम करना आरंभ कर दिया। सेठ जी अंदर से कुछ संतुष्ट थे कि चलो पहला पग तो सही पड़ा।

एक रात जब आत्माराम सेठ जी की कोठी पर काम कर रहा था वह पैदल चल कर उसके घर पहुँच गए और बाहर से घंटी बजाई। शीला ने जब दरवाज़ा खोला वह सेठजी को देखकर कुछ घबराई और कुछ चकित हुई। सेठजी चाहे उसे अच्छी तरह से पहचानते थे मगर अनजान बनते हुए पूछा, " तुम आत्माराम की पत्नी हो?" शीला ने सिर हिला कर हाँ में उत्तर दिया। सेठ जी बोले, " मैं सैर करते हुए इधर से जा रहा था सोचा क्यों ना तुम्हारा घर देखता जाऊँ।" शीला ने उत्तर दिया, " यह तो हमारा सौभाग्य है आप जैसे महान व्यक्ति हमें पूछने आएँ।" वह उन्हें आदरपूर्वक अंदर ले गई। अपना छोटा सा घर दिखाया और

अपने दो बच्चों से मिलवाया जिनकी आयु सात और पाँच वर्ष की थी। फिर उसे एकदम ध्यान आया, कहने लगी, "आप चाय पी कर जाइएगा।" सेठजी मुस्कुराए और बोले, " आज घर से पीकर आया हूँ फिर किसी दिन पी लूँगा। उधार रही।"

जब आत्माराम घर आया तो शीला से सेठीजी के आने की बात सुनकर उसे भी हर्ष हुआ। मगर कहने लगा, " तुमने अच्छा नहीं किया। उन्हें बिना कुछ खिलाए पिलाए जाने दिया।" शीला बोली, " मैं घबरा गई थी। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतना बड़ा आदमी हम छोटे लोगों के घर कैसे आ गया।"

कुछ दिनों के पश्चात सेठजी शीला को मिलने फिर गये परन्तु इस बार वह बच्चों के लिए कुछ मिठाई भी ले गए और शीला से कहने लगे, " तुम्हारे बच्चे बड़े प्यारे हैं। इनसे मिलने को जी कर रहा था इसलिए चला आया। तुम्हें बुरा तो नहीं लगा।" शीला ने उत्तर दिया, "सेठ जी,आप कैसी बात कर रहे हैं। हम तो आपके आभारी हैं। आप हमारे घर आएँ और हमें बुरा लगे, यह कैसे हो सकता है।"

सेठजी घिसेपिटे हुए व्यक्ति थे। कहीं आत्माराम को कोई शंका ना हो अगली बार वह उसके घर तब गए जब वह घर में उपस्थित था। फिर एक शाम वह गए जब आत्माराम उनकी कोठी पर काम कर रहा था। जाते ही शीला से कहने लगे, " तुम सोचती होगी मैं तुम्हारे बच्चों के लिए तो कुछ लाता हूँ, तुम्हारे लिए कभी कुछ नहीं लाया। आज तुम्हारे लिए एक छोटा सा उपहार लाया हूँ। " उन्होनें अपने कोट की जेब से एक डिब्बीया निकाली। उसे खोल कर सोने का एक हार बाहर निकाला जिसे देख कर शीला आश्चर्यचकित हो गई और कहने लगी, " सेठजी , यह आप क्या कर रहे हैं। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती। मेरे पति क्या अर्थ

निकालेगें इसका।'' सेठजी तब बोले, ''उन्हें बताने की क्या आवश्यकता है।'' वह समझ गई । वह शायद समझ तो पहिले ही गई थी कि सेठ जी का उसके घर बार बार उसके पति की अनुपस्थिति में आना और उसे यों घूर घूर का देखना इस बात का संकेत था कि उन्हें उससे प्यार हो गया था।

शीला एक साधारण परिवार से आई थी। आत्माराम का संबंध भी एक छोटे परिवार से था। शीला ने इतना बहुमूल्य हार अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया और ना ही कोई विरोध किया तो सेठजी ने स्थिति का पूरा लाभ उठाते हूए वह हार उसके गले में डाल दिया और कहने लगे, '' तुम बहुत सन्दर हो।'' जब उनके हाथ ने शीला के शरीर को छुआ वह अपने आप पर नियंत्रण ना कर सके और झट उसे गले लगा लिया। शीला ने कोई विरोध नहीं किया।

सेठ जी के चले जाने के पश्चात शीला असमंजस में पड़ गई । अगर यह बात उसके पति को पता लग गई तो क्या होगा। फिर सोने का हार भी था। उसी रात शीला ने हार का उल्लेख ना करते हुए आत्माराम से कहा, '' सेठ जी आज भी आए थे। मुझे उनका हर दूसरे चौथे दिन इस प्रकार आना विशेषकर जब आप घर पर नहीं होते अच्छा नहीं लगता। गली मुहल्ले वाले क्या कहेंगे।'' वह चुप रहा । शीला ने फिर कहा, '' आपने कोई उत्तर नहीं दिया ।'' तब उसने कहा, '' तुम्हें कोई आक्षेप है?'' शीला सोच में पड़ गई । थोड़ी देर बाद बोली, '' प्रश्न आक्षेप का नहीं , उपभुक्ता का है।''

''तुम्हें यदि उनका आना अच्छा नहीं लगता, तो तुम उन्हें आने से रोक दो।''

''आप क्या चाहते हैं।'' शीला ने पूछा।

"मुझे इसमें कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती।" आत्माराम ने बिना किसी झिझक के कहा।

शीला आगे कुछ नहीं बोली। चाहती तो वह भी यही थी कि सेठ जी का आना बंद ना हो मगर वह अपनी इच्छा को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकती थी। आत्माराम भी जानता था, समझता था कि उसके विकास का कारण उसका काम नहीं था, बल्कि शीला थी। यदि सेठजी क्रोध में आकर उसे निकाल दें तो आधे वेतन पर भी काम नहीं मिलेगा। दो दिन पूर्व उन्होंने कहा था, " तुम अपने बच्चों को किसी अच्छे स्कूल में क्यों नहीं भेंजते। उनकी पढ़ाई का सारा खर्चा मैं करूँगा।"

सेठजी के जो थोड़े बहुत बाल सफ़ेद थे वह उन्होंने धूप में नहीं किए थे। जब उन्होंने देखा कि ना तो आत्माराम को और ना ही शीला को उनका आना जाना बुरा लगता है, उन के लिए अब यह समस्या थी कि आख़ीरी कद़म कैसे उठाया जाए। दूसरे शब्दों में शीला से पूर्ण मिलाप कैसे हो। काफ़ी सोच विचार के बाद उनको एक प्रक्रिया सूझी। उन्होंने एक दिन आत्माराम को अकेले में अपने कमरे में बुलाया और कहा, " तुम जानते हो कई व्यापारी माल का भुगतान देर से करते हैं जिस से हमें ब्याज की हानि होती है और कभी कभी धन की कमी भी होती है ज़िसके कारण हमें बैंक से पैसा ब्याज पर उठाना पड़ता है।"

आत्माराम ने हाँ में हाँ मिलाई, " सेठजी आप ठीक कहते हैं।" सेठजी ने आगे कहा, " मैं चाहता हूँ तुम महीने में तीन चार बार दिल्ली, कानपुर, इत्यादि जाओ और पार्टीयों से चेक ले आओ। यह आवश्यक नहीं एक ही बार सब स्थानों पर जाओ। एक ट्रिप तीन या चार दिन का रखो। क्या विचार है तुम्हारा?"

"जैसा आप उचित समझें। आपका हुक्म सर आँखों पर ।"

"तो ठीक है अगले सप्ताह तुम पहले दिल्ली चले जाओ।"
घर आकर जब आत्माराम ने सेठजी की योजना का उल्लेख शीला से किया तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया। पति पत्नी अब दोनो जान गए थे कि सेठ के प्रस्ताव का मौलिक अर्थ क्या था।
आत्माराम की घर से अनुपस्थिति की पहली रात के पहले दो घंटे जो सेठजी ने शीला के साथ गुज़ारे उस रात से आत्मराम की काया पलट गई और सेठ जी ने धीरे धीरे दूसरी सुन्दर स्त्रियों पर दृष्टि डालना कम कर दिया।

* * * * * * * * * * * * * *

संबंधों का ज्वारभाटा

हिन्दुस्तान के बटवारे से कुछ मास पूर्व की बात है। मुलतान में रहनेवाला ठाकुरदास अपनी पत्नी रामप्यारी और पुत्री सावित्री के साथ एक ताँगे में बैठ कर अपने निकट के रिश्तेदार को मिलने मुलतान से दस मील दूर शेरशाह नाम के गाँव में गये। शाम को कोई पाँच बजे जब वे वापिस मुलतान आ रहे थे आधे रास्ते में चार व्यक्तियों ने जो सड़क के बीच खड़े थे उनका रास्ता रोक लिया। उन्होंने अपने मुँह काले कपड़ों से ढक रखे थे ताकि उनको कोई पहचान ना सके। पहले उन्होंनें कोचवान को ताँगेसे उतरने के लिए कहा। फिर उन्होंने सावित्री जो अपनी माँ के साथ ताँगे में आगे बैठी थी का अपहरण करने के संकलप से उसे पकड़ लिया। जब उसने प्रतिरोध किया और माता पिता ने उसे छुड़ाने की चेष्ठा की तो उनमें से दो ने एकाएक लाठियाँ बरसानी शुरू कर दीं जिस के कारण वे दोनो सावित्री को बचाने में विफल हो गये। ठाकुर दास घायल होकर ताँगे से नीचे गिर पड़ा और रामप्यारी ताँगे के अंदर मुर्च्छित हो गई। कोचवान जो एक मुसलमान था दूर हट कर सब तमाशा देखता रहा। उसने उनको बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। वे लोग सावित्रीको जो उस समय सोलह वर्ष की थी भगा कर ले जाने में सफल हो गये। सौभाग्य से पीछे सेना की एक गाड़ी आ रही थी। उसमें सवार सैनिकों ने गाड़ी रोककर ठाकुर दास और रामप्यारी को उठाया और गाड़ी में अपने साथ मुलतान ले जा कर अस्पताल में प्रवेश करवा दिया। ठाकुर दास

का एक लड़का भी था जिसका नाम मदनगोपाल था। उसकी एक वर्ष पूर्व लक्ष्मी नाम की एक लड़की से विवाह हुआ था। कोचवान ने मुलतान पहुँच कर उसे इस दुर्घटना की सूचना दी। वह भागता हुआ अस्पताल आ गया। कुछ दिन रहने के बाद दोनों की अस्पताल से छुट्टी कर दी गई। सावित्री के अपहरण की रिर्पोट तो मदन ने पुलिस को लिखवा दी मगर सावित्री का कोई पता नहीं लगा।

हिन्तुस्तान को भारत और पाकिस्तान में बॉटने की घोषणा जब अंग्रेज़ी सरकार ने की तो हिन्तुस्तान के कई भागों में विशेषकर पंजाब, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, बंगाल और बिहार में सांप्रदायिक झगड़े शुरू हो गए। मुलतान तो वैसे भी बलवों के लिए दुर्नाम था। हर वर्ष कोई ना कोई बलवा अवश्य होता था। किसी को अब कोई जानकारी नहीं थी कि कल क्या होगा। इन परिस्थितियों में जहां मारकुटाई, अपहरण तथा लूटमार की घटनाएँ हो रही हों वहाँ सावित्री का मिलना संभव नहीं लगता था। उसका इस प्रकार सहसा लुप्त हो जाने का दुःख परिवार के अतिरिक्त अन्य सगे संबंधियों को भी था जो इस दुर्घटना में अपने भविष्य का अंधकार देख रहे थे मगर रामप्यारी तो सारा दिन रोती रहती। हर प्रातः काल उठ कर कृष्ण भगवान की मूर्ती के आगे बैठकर पूजा करती मगर सावित्री का कहीं पता नही चला। ज्यों ज्यों समय बीतता गया दंगे फ़साद बढ़ते गए। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दु भारत की ओर प्रवास करने लगे और भारत के कई प्रांतों से मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे। उन लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी जानमाल और मर्यादा उनके जन्मस्थान में सुरक्षित नहीं थी। मुलतान से भी हिन्दुओं का निकास आंरभ हो गया। अंत में ठाकुरदास का परिवार अन्य शरणार्थीयों के साथ

मुलतान छोड़कर भारत आ गया। कुछ दिन जलन्धर कैम्प में रहने के बाद वे करनाल चले गये जहाँ सरकार ने मुलतान में छोड़े हुए घर की क्षतिपूर्ति में करनाल शहर के अंदर एक मकान ठाकुरदास के नाम कर दिया था। वह मकान उन मकानों में से एक था जो करनाल में रहनेवाले मुसलमान पाकिस्तान को प्रवास करते समय पीछे छोड़ गए थे। जब करनाल में ठाकुरदास बस गया तो उसने कचहरी में फिर से अपनी वकालत शुरू कर दी। उसके लड़के मदनगोपाल को कानपुर की किसी कम्पनी में नौकरी मिल गई और वह अपनी पत्नी के साथ वहाँ रहने लगा। जब ठाकुरदास कचहरी जाता तो रामप्यारी घर में अकेली होने के कारण सावित्री को बहुत याद करती और याद करके दुःखी होती और आँसू बहाती।

पन्द्रह अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र देशों में सम्मिलित हो गया। उसी दिन ही पाकिस्तान नाम के नये देश का जन्म हुआ। जिस प्रकार कई हिन्दु स्त्रियों का मुसलमानों ने अपहरण किया था उसी प्रकार कई हिन्दुओं ने मुसलमान औरतों का अपहरण किया था। स्त्रियों के अतिरिक्त कई अन्य व्यक्ति जिन के बच्चे भी थे किसी कारण अपने परिवार से अलग हो गये थे। दो देशों के अधिकारियों ने आपिस में बातचीत कर के यह निर्णय लिया कि लुप्त व्यक्तियों का पता लगा कर उन्हें उनके परिवारों के पास भेज दिया जाए। पुनर्वास विभाग ने इस निर्णय के अंतर्गत समाचार पत्रों और रेडियो द्वारा यह घोषणा की जिस परिवार का कोई सदस्य पाकिस्तान में किसी कारण रह गया हो या लुप्त हो और उन्हें विश्वास हो कि वह अभी जीवित है वह उस व्यक्ति का नाम और अन्य ब्योरा एक फोटो के साथ यदि हो तो ,भारत सरकार के

पुनर्वास विभाग को भेजें जो इस की खोज करेगा। ठाकुरदास ने भी सावित्री के बारे में विस्तृत सूचना लिखकर विभाग को भेज दी।

रामप्यारी को पूर्ण विश्वास था कि उसकी सावित्री उसको एक दिन अवश्य मिल जायेगी। वह कहती, "भगवान मेरी प्रार्थना कभी नहीं ठुकरायेंगे। मैं प्रतिदिन उनकी पूजा करती हूँ। उनके चरण धोती हूँ। उनकी मूर्ती पर फल चढ़ाती हूँ।" कभी कभी वह रो पड़ती और सोचती, "भगवान जाने मेरी बेटी कहाँ होगी। क्या करती होगी। उसकी क्या दशा होगी।" कई प्रकार के अशुभ विचार उसके मन मे आते। उन दुष्टों ने कहीं उसका वध तो नहीं कर दिया। कहीं उसको किसी कोठे पर तो नहीं बिठा दिया। हो सकता है उसका धर्म परिवर्तत करके उसका विवाह किसी मुसलमान के साथ कर दिया हो। यह भी तो संभव है उसने आत्म हत्या कर ली हो। जब कई मास तक सरकार की ओर से कोई सूचना नहीं आई तो उसकी आशा निराशा में बदल गई और जब वह पूर्ण रूप से हताश हो गई तो उसे एक संदेशा मिला जिससे उसकी आस फिर से बंध गई।

हुआ क्या एक दिन नित्यानुसार से पूर्व ठाकुरदास दोहपर को घर आया और अंदर प्रवेश करते ही उसने जोर से आवाज़ लगाई, "रामप्यारी कहाँ हो? तुम्हारे लिए शुभसमाचार लाया हूँ। हमारी सावित्री मिल गई है।" यह समाचार सुनकर रामप्यारी अति प्रसन्न हुई और पूछने लगी, " कहाँ है वह?" ठाकुरदास ने कहा, "आज कचहरी में पुनर्वास विभाग का एक कर्मचारी आया था। उसने मुझे एक फोटो दिखाई और पूछने लगा, "क्या आप इसे पहचॉनते है?" फोटो देखते ही मैंने तुरंत अपनी सावित्री को पहचान लिया। उसने फिर कहा," आपकी बेटी जलंधर पुलिस थाने में है। आप वहाँ जा कर उसे ले आ सकते हैं। उसने मुझे वहाँ

का पूरा पता दिया और विभाग की ओर से एक पत्र भी दिया। मैं कल सवेरे सवेरे पहली बस से निकल जाऊँगा और शाम तक सावित्री को साथ लेकर लौट आऊँगा। मैं मदन को दूरभाष द्वारा सूचित कर देता हूँ । वह भी यहाँ आ जाएगा।'' रामप्यारी ने आकाश की ओर देखते हुए कहा, ''भगवान तेरा लाख लाख धन्यवाद है। तेरे घर में देर है परन्तु अंधेर नहीं ।''

प्रातःकाल जलंधर जाते समय ठाकुरदास ने रामप्यारी को कहा, '' गाजर का हलवा और कचोड़ियां बना देना । हमारी सावित्री को बहुत अच्छी लगती है।'' रामप्यारी ने उत्तर दिया, ''आप समझते हैं जैसे मैं भूल गई हूँ । मैंने तो रात को ही दाल भिगो दी थी।'' जलंधर थाने में जब ठाकुरदास सावित्री से गले मिला तो उसकी आँखों में आँसू भर आए और सावित्री ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। सरकारी कारवाई पूरी होने के पश्चात ठाकुरदास ने जल्दी से ताँगा किया। रेलवे स्टेशन पहुँच कर पाँच बजे की गाड़ी पकड़ी और रात को घर पहुँच गया। घर पहुँचते पहुँचते ग्यारह बज गए। सब उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सावित्री को गले लगाते ही दोनो माँ बेटी फूट फूट कर रोईं, फिर सावित्री भाई और भाभी के गले मिली। माँ ने उसे अपने हाथ से कचोड़ियाँ और गाजर का हलवा खिलाया। क्योंकि वह बहुत थक चुकी थी उसे बात करते करते नींद आ गई। सावित्री के आने का शुभ समाचार सारे मुहल्ले में फैल गया। आस पास से बहुत लोग सावित्री को देखने और परिवार को बधाई देने के लिए आए। रामप्यारी ने सबका मुँह मीठा कराया। उसके चेहरे पर लोगों ने इतने समय के पश्चात मुस्कान देखी।

जब ठाकुरदास और सावित्री रेलगाड़ी में बैठे थे तो पिता ने पूछा, ''बेटी तुम ठीक तो हा ना? जब वे दुष्ट तुम्हें उठा कर ले गए

थे उसके पश्चात क्या हुआ था? वहाँ कहाँ कहाँ रही तू? क्या क्या कष्ट उठाने पड़े?''

सावित्री ने कहा,'' बाबा, मैं ठीक हूँ। सारी बात घर चल कर बताऊँगी। मैं बहुत थक गई हूँ। '' उसे गाड़ी में बैठे बैठे नींद आ गई। ठाकुरदास ने उससे उस समय कुछ और पूछना उचित नहीं समझा परन्तु उसके मन में भय भी था और शंका भी कि सावित्री उसे कुछ बताने के लिए टालमटोल कर रही थी। घर आने के तीन दिन बाद भी उसने कुछ नहीं बताया । क्योंकि मिलनेवाले भी अभी आ जा रहे थे माता पिता ने सोचा अवकाश में पूछेंगे। मदन और लक्ष्मी दो दिन रहने के पश्चात कानपुर वापिस चले गए। यदि कोई मिलने वाला सावित्री से कुछ पूछने की चेष्टा करता तो वह यही कहती, '' मैं बहुत व्यग्र हूँ। थोड़ा ठीक हो जाऊँ सब कुछ विस्तार से बताऊँगी।''

एक रात जब वे सोने वाले थे कि एकाएक सावित्री के पेट में दर्द हुआ ओर वह चिल्लाने लगी। थोड़ी देर में उसने उलटी भी कर दी। रामप्यारी ने सोचा शायद भोजन भारी होने के कारण जी अजीर्ण हो गया था। एक आध और उलटी आने से पेट साफ हो जाएगा और वह ठीक हो जाएगी। उसने थोड़ी सी अजवायन नमक के साथ मिला कर सावित्री को खाने के लिए दी मगर उसका दर्द कम नहीं हुआ। वह और जोर जोर से चिल्लाने लगी। उसे तुरंत अस्पताल ले जाया गया । जहाँ दो दिन रहने के पश्चात उसकी छुट्टी कर दी गई परन्तु छुट्टी करने से पूर्व जब डॉक्टर ने बताया कि वह गर्भवती थी तो माता पिता के पाँव तले से ज़मीन हिल गई। उस समय वे चुप रहे मगर घर पहुँच कर रामप्यारी उस पर बरस पड़ी, ''कुलच्छनी, यह तू ने क्या किया। जब लोगों को पता चलेगा हम तो किसी को मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहेंगे। हमारी तो

बिरादरी में नाक कट जाएगी।'' सावित्री ने आँखों में आँसू भरकर कहा,'' मैंने कुछ भी जानकर नहीं किया।''

रामप्यारी ने क्रोध से कहा,'' जब तुझे मालूम हो गया था कि तू गर्भवती है तूने आत्महत्या क्यों नहीं कर ली? एक म्लेच्छ के बच्चे को पेट में पालते हुए तुझे अपने धर्म का कुछ भी ख्याल नहीं आया।''

सावित्री ने दुःखी मन से कहा,'' मैं विवश थी। मैं यहाँ नहीं आना चाहती थी। मुझे हठात् यहाँ लाया गया है। आप मुझे वापिस पाकिस्तान भेज दीजिए।''

ठाकुरदासने कहा,''यह अब नहीं हो सकता।''

''फिर मैं क्या करूँ?'' सावित्री ने रोते हुए कहा।

''ठीक है बच्चा गर्भपात करा देगें,'' ठाकुरदास ने अपना विचार प्रकट किया।

सावित्री चुप रही मगर रामप्यारी से चुप नहीं रहा गया। उसने कहा,'' इस से क्या होगा। हमारे घर में पाँव रखकर इसने हमारे घर को अपवित्र कर दिया है और हमारा तो धर्म भ्रष्ट हो गया है।''

ठाकुरदास ने रामप्यारी को समझाते हुए कहा, '' हम इसकी शुद्धि करवा देंगे। घर में हवन करवा देंगे। घर में सारे बर्तन बदल देंगे। यदि तू कहेगी तो सारे कपड़े बदल देगें। अब यह बिचारी कहाँ जायेगी।''

रामप्यारी के क्रोध का पारा अभी नहीं उतरा था । उसने फिर चिल्ला कर कहा,''तू वहाँ मर क्यों नही गई।''

''कैसे मरती माँ, मेरे बस की बात नहीं थी।'' सावित्री ने उदासीनता से कहा।

'' क्या वहाँ रेलगाड़ी नहीं थी। नदि नहीं थी? विष खा सकती थी। गले मे फंदा डाल कर आत्महत्या कर सकती थी। कोई मरना चाहे

तो सौ साधन है मरने के। मगर तू ने हमारे धर्म को भ्रष्ट जो करना था, इसलिए आ गई यहाँ। ना जाने किस जन्म का तूने हम से बदला लिया है।''

ठाकुरदास क्रोध में आ गया,'' अब बस भी करो। इतनी देर हो गई है कुछ खाने का प्रबन्ध करो।''

''आपको खाने की पड़ी है। मेरे धर्म का क्या होगा। देखो, अब मैं इस कुलटा के लिए भोजन नहीं बनाऊँगी और तुम इसके रहने का प्रबंध कहीं और कर दो।'' रामप्यारी ने तरिस्कार की भावना से कहा।

जितना ठाकुरदास अपनी पत्नी को समझाने का प्रयास करता वह उस से अधिक बिगड़ती। ऐसा प्रतीत होता था उसने सावित्री से बेटी संबंध तोड़ने का निश्चय कर लिया था।

ठाकुर दास का अनुमान था कि समय बीतने के साथ रामप्यारी शांत हो जाएगी। यह तो वैसे निश्चित हो ही गया था कि सावित्री के पेट में जो बच्चा था वह गिरवा दिया जाएगा।

अगले दिन ठाकुर दास अपने जान पहचान के डॉक्टर से मिला और उसे सारी कथा सुनाई। डॉक्टर ने कहा,'' बच्चे का गर्भपात करना केवल अपराध ही नहीं पाप भी है। मैं यह काम नहीं कर सकता।''

ठाकुरदास ने रोनी शक्ल बना कर कहा, ''मैं क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ? आप चाहते हैं मैं आत्महत्या कर लूँ।'' इतना कहने के बाद वह डॉक्टर के पाँव पड़ गया, ''डॉक्टर साहब , मुझे बचा लीजिए। मैं आपका सदा आभारी रहूँगा।''

डॉक्टर जोशी ने सोच कर कहा,'' क्या तुम्हारी लड़की बच्चा गिराने के लिए तैयार है?''

ठाकुरदास ने सिर हिलाते हुए कहा,"जी हाँ, वह पूर्ण रूप से तैयार है।"

"ठीक है, तुम कल बारह बजे उसे मेरे नर्सिंग होम मे ले आना"।

ठाकुरदास उसे अगले दिन डॉक्टर जोशी के पास ले गया। जोशी ने चिकित्सा सम्बन्धी जाँच के बाद ठाकुर दास को बताया," इसका गर्भपात तो मैं कर दूँगा मगर इस की जान चले जाने की आशंका है क्योंकि इसके शरीर में रक्त की मात्रा बहुत थोड़ी है।"

"रक्त का प्रबंध मैं कर दूँगा।"

"वह तो ठीक है फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता और हाँ, क्योंकि गर्भपात करना अपराध है आप को लिख कर देना पड़ेगा कि इसके पेट में अल्सर है। यदि ऑपरेशन के कारण इसकी मृत्यु हो गई तो डॉक्टर इसका उत्तरदायी नहीं होगा।" जोशी ने कहा

"ठीक है। मैं घर जाकर अपनी पत्नी से परामर्श कर के फिर आऊँगा।"

ठाकुरदास ने अपनी पत्नी के कहने पर मदन को कानपुर से बुलवाया । तीनों ने बैठ कर परामर्श किया। मदन ने कहा," गर्भपात तो करवाना ही पड़ेगा। हमारे पास कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है।"

ठाकुरदास ने कहा, "परन्तु सावित्री की जान जा सकती है।"

रामप्यारी तुरंत बोल पड़ी," जाती है तो जाने दो। हम क्या कर सकते हैं।"

मदन ने माँ की हाँ मे हाँ मिलाते हुए कहा," पिताजी , माँ ठीक तो कहती हैं । हम और क्या कर सकते हैं।"

जब ठाकुरदास ने मदन को उसकी सहायता लेने के इरादे से उसे रूक जाने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया," पिताजी, मैं बड़ी

कठिनाई से दो दिन की छुट्टी लेकर आया हूँ। अगर कोई ऐसी वैसी बात हो जाए तो मुझे फोन कर देना, मैं तुरंत आ जाऊँगा।''
डॉक्टर जोशी ने ऑपरेशन कर के बच्चे को गिरा दिया। दो दिन नर्सिंग होम में रहने के बाद सावित्री घर आ गई ।घर पहुँचते ही माँ के मुँह से यह शब्द निकले,''तू बच गई।''
मगर वह बची नहीं ।अभी नर्सिंग होम से आए हुए तीन दिन ही हुए थे उसकी मृत्यु हो गई।मृत्यु गर्भपात के कारण हुई या वह मर्माघात सहन ना कर सकी यह तो ईश्वर ही जानता था और ईश्वर कभी कुछ नहीं बताता।
सावित्री का अंतिम संस्कार करने के लिए जब ठाकुरदास ने मदन को फोन किया तो उसने अनुत्तरदायित्व से उत्तर दिया,'' पिताजी, मैं आ कर क्या करूँगा।जो होना हो होकर ही रहता है। आप स्वयं ही उसका अंतिम संस्कार कर दीजिए।''

* * * * * * * *

सीमापार

सिंघ प्रांत के नगर मीर पुर ख़ास में लखीराम गिडवानी की किराने की दुकान थी जो अच्छी चलती थी चाहे वह मिलावट करने से नहीं डरता था । काली मिर्च में पपीते के बीज, नमक में शोरा, आटे में जव, सुपारी में खजूर की गुठली के दुकड़े, सूखी लाल मिर्च और हल्दी में रंग, तम्बाकू में घोड़े की लीद को सुखाकर, गुलाब जल और केवड़ा में साधारण जल, घी में चर्बी - वह हर वस्तु में कुछ ना कुछ मिलावट करता था। मीर पुर ख़ास के निवासी तो उससे खाने पीने की सामग्री कम लेते थे क्योंकि वे जानते थे वह मिलावट करता है। उस के अधिक ग्राहक आस पास के ग्रामवासी थे जिन्हें मिलावट के विषय पर नाम मात्र की जानकारी थी। वे लोग अनपढ़ थे।

जब लखीराम का लड़का लालचंद स्कूल से आता तो वह उसे दुकान के काम में लगा देता। उसे पिता के मिलावट करने का ढ़ंग अच्छा नहीं लगता था। उसने कई बार पिता को कहा भी मगर उसकी आलोचना का लखीराम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंधेरा होते ही वह दुकान बंद कर देता था। कभी कभी लखीराम अपने पुत्र को साथ लेकर पास के आश्रम में स्वामीजी का भाषण सुनने के लिए जाता था। एक शाम स्वामीजी गाय के विषय पर व्याख्यान देते हुए कहने लगे, " गाय हमारी माता है। हमें इसकी पूजा करनी चाहिए। इसे कभी मारना नहीं चाहिए।" जब भाषण समाप्त हो गया घर लौटते समय रास्ते में लखीराम ने लालचंद को कहा, " स्वामीजी ने आज जो भाषण दिया, तुम्हें समझ आया कि नहीं।"

" मैं समझ गया।" लालचंद ने उत्तर दिया।
"स्वामीजी के भाषण को सदा मन लगाकर सुनना चाहिए और केवल सुनना ही नहीं, उस पर क्रिया भी करनी चाहिए।"

एक दिन दोपहर को लखीराम अपने पुत्र को दुकान पर बिठा कर थोड़ी देर कि लिए किसी काम से चला गया। उसकी अनुपस्थिति में एक गाय दाल की बोरी मे मुंह डाल कर दाल खाने लगी। लालचंद ने उसे हाथ से हटाने की चेष्टा की मगर गाय नहीं हटी। इतने में लखीराम काम करके दुकान पर आ गया। उसने जब गाय को दाल खाते हुए देखा तो एक डंडा उठाकर गाय को इतने ज़ोर से मारा कि जो कुछ उसके मुँह में था वह बाहर निकल आया और वह तुरंत भाग गई। फिर क्रोधित होकर उसने लालचंद को डांटा, " आँखें बंद करके बैठा था क्या? देख रहा है गाय खा रही है और तू उसे पुचकार रहा है। पशु पुचकारने से नहीं मानता। वह तो डंडे का यार है।" जब लालचंद ने अपने पिता को स्वामीजी के भाषण की ओर ध्यान दिलाया तो लखीराम कहने लगा, " तू तो मूर्ख है । जो कुछ स्वामीजी कहते हैं उसे वहीं आश्रम में छोड़ देते हैं, प्रसाद की तरह गाँठ में बांध कर घर नहीं ले आते।"

दुकान चलाते चलाते एक रात लखीराम भी दुकान छोड़ दिल पर हाथ रखे मीर पुर ख़ास तो क्या संसार से चला गया। उस समय लालचंद अठारह का हो चुका था। दुकान चलाने का काम तो पिता से वह सीख ही चुका था, झट दुकान संभाल ली। जब उसका पिता जीवित था वह उसे मिलावट करने से वर्जित करता था मगर जब उसने देखा कि मिलावट ना करने से लाभ कम होता है उसने भी मिलावट करना आरंभ कर दिया। चार मास के पश्चात माँ के कहने पर उसने नीना नाम की एक लड़की से विवाह

कर लिया। नीना का मैका मीर पुर ख़ास से कोई सत्तर मील दूर नवाबशाह गाँव में था।

लालचंद की दुकान उसी प्रकार से अच्छी तरह चलती रही जैसे उसके पिता के समय चलती थी। उसे थोड़ी सी यह कठिनाई आवश्य हुई कि वह तो पिता के काज में उसका हाथ बटाता था मगर क्योंकि वह माता पिता की एकमात्र संतान थी उसका सहायक कोई नहीं था। उसने धीरे धीरे नीना को दुकान का हिसाब किताब रखना समझा दिया। क्योंकि वह कुछ पढ़ी लिखी थी और उसका पिता मुनशी था वह जल्द सीख गई। इस प्रकार लालचंद की यह चिंता तो मिट गई । अधिकाशं ग्राहक जो उसकी दुकान पर आते थे वे मुसलमान थे । सिंध की मुसलमान स्त्रियाँ विशेषकर ग्रामीण अन्य मुसलमान स्त्रियों के समान परदा नहीं करती थीं। वे गाँव से कुछ माल लेकर मीर पुर ख़ास बेचने आती थीं और गाँव लौटते समय लालचंद की दुकान से घर की सामग्री-आटा, नमक, दाल, तेल इत्यादि ख़रीदती थीं। वैसे तो गाँव से कुछ पुरूष भी काम करने आते थे मगर सौदा प्रायः स्त्रियाँ ही खरीदती थीं।

उन ग्राहकों में एक युवती नूरन अपनी माँ के साथ सप्ताह में दो तीन बार लालचंद की दुकान से सामग्री ख़रीदने आती थी । माँ बेटी मीर पुर ख़ास में गाँव से सब्ज़ी लाकर बेचती थीं। नूरन के दो भाई थे। एक का नाम फ़ैज महमद था मगर लोग उसे फ़ैज़ा कह कर बुलाते थे। पेशे से वह बढ़ई था। दूसरा भाई कालेखान राजगीर था। एक तो उसका नाम ऐसा था और रंग से भी काला था, लोग उसे कालू कहते थे। जहाँ लखीराम अपने काम से काम रखता था और ग्राहक से कभी हँस के बात नहीं करता था, लालचंद ग्राहकों से इधर उधर की बातें भी कर लेता था और

उसके अधरों पर मुसकान भी रहती थी अर्थात कोई स्त्री उसे दखे ले तो उसे दोबारा देखने में कोई लज्जा नहीं आती थी। उसकी आकर्षक मुसकान नूरन के मन को भा गई । क्योंकि वह सुन्दर थी और उसका मुख बड़ा भोला भाला लगता था वह भी लालचंद के मन को भा गई। मगर दोनो का संगम सरल नहीं था। बस इतना होता था कि जब लालचंद नूरन को सौदा पकड़ाने लगता तो वह उसका हाथ छू लेता था और जब कभी नूरन उसे पैसे पकड़ाने लगती तो वह लालचंद का हाथ छू लेती। एक प्रकार से दोनो ही आघात हो चुके थे। स्वप्नों में चाहे वह रात्री को मिलते हों परन्तु वास्तविक्ता कुछ और थी। वे दोनो बात तक भी नहीं कर सकते थे। नूरन के साथ उसकी माँ जुड़ी रहती थी और लालचंद के ऊपर नीना की दृष्टि जमी रहती थी। लालचंद जिसने कभी स्कूल की पुस्तकों के अतिरिक्त किसी और पुस्तक को देखा तक भी नहीं था अब वह बाज़ार से हीर राँझा, ससी पुनूँ जैसी प्रेम कहानियों वाली पुस्तकें पढ़ने के लिए ले आता था और रात को देर तक पढ़ता रहता था। उधर नूरन अपने घर में बिना जल मछली तड़पति रहती थी।

अप्रैल मास में जब गेहूँ की फ़सल तैयार हो जाती है तो उसे काटने , पछोरने, तोलने , बोरियों में भरने या गोदाम में रखने के लिए, मंडी में माल ले जाने के लिए सामान्य से कहीं अधिक श्रमिकवर्ग की आवश्यकता पड़ती है। ज़मीनदार दुगना तिगना वेतन देकर सब प्रकार के कारीगरों को काम के लिए बुला लेते हैं। फ़ैजा, कालू और उनकी माँ को खेतों में अधिक वेतन पर काम मिल गया तो उन्होंने कुछ समय के लिए मीर पुर ख़ास आना बंद कर दिया। सब्ज़ी बेचने के लिए अब नूरन अकेली सप्ताह मे चार बार आने लगी और कुछ ना कुछ लेने के बहाने वह लालचंद की

दुकान पर जाती। क्योंकि नूरन की माँ अब साथ नहीं होती थी उसे लालचंद से बात करने का अवसर मिल जाता।

एक दिन लालचंद ने नूरन को कहा, "तुम नगर के बाहर आटे की चक्की के पास रूको मैं अभी आता हूँ।" जब वह चली गई तो उसने नीना को कहा, " तुम दुकान देखना, मैं अभी आता हूँ।" वह समझ गई यह नूरन के पीछे जा रहा था। इससे पूर्व वह कुछ कहती, वह चला गया। उस समय दुकान पर दो ग्राहक खड़े थे जिन से निपट कर नीना भी लालचंद के पीछे चली गई। मगर कई रास्ते होने के कारण उसे पता नहीं लगा कि लालचंद किस ओर गया था। इधर उधर भटक कर जब वह वापिस दुकान पर आई लालचंद दुकान पर बैठा था। वह नीना पर ऐसे बरसा जैसे कोई मेघ फट गया हो। इसका लाभ लालचंद को हुआ। अब वह जब कभी दुकान छोड़कर जाता, नीना में इतना साहस नहीं होता कि वह पूछती, " कहाँ जा रहे हो?" लालचंद का मार्ग अब धीरे धीरे साफ़ होता गया। इस आवर्त्तन में नीना को अपने छोटे भाई के विवाह के अवसर पर कुछ दिन पूर्व अपने मैके जाना पड़ा। वह जाना तो नहीं चाहती थी परन्तु माता पिता के अनुरोध पर उसे जाना पड़ा।

एक दिन जब नूरन अभी लालचंद की दुकान पर आई ही थी अकस्मात बादल गरजने लगे और बिजली चमकने लगी। देखते देखते वर्षा होने लगी और साथ साथ ओले भी पड़ने लगे। लालचंद ने नूरन को अंदर बुला लिया और दुकान बंद कर दी। दुकान के पीछे ही लालचंद का घर था। क्योंकि वे कई मास से एक दूसरे से अकेले में मिलने का हर संभव प्रयास कर रहे थे, इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था। जब दोनो के तन एक दूसरे से मिले तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि स्वर्ग था तो

वह दो प्रेमियों के संगम में था। परन्तु यह संगम क्षणिक था। फ़सल का कार्य समाप्त होते ही नूरन की माँ फिर साथ आने लगी और उसके भाई भी वापिस अपने पुराने काम पर आने लग गए। नूरन और लालंचद के प्रेम में कई बाधाएँ थीं। नूरन मुसलमान थी और कंवारी थी। लालचंद विवाहित था और हिन्दु धर्म का था। इसी बीच नीना ने पहले बच्चे को जन्म दिया ।वह एक बालक था।

सोहनगढ़ में रहने वाली दाई की दृष्टि नूरन पर पड़ी तो वह कुछ विस्मिति हुई ।उसने नूरन की माँ को कहा, " तुम्हारी नूरन का किसी पुरूष के साथ अनैतिक संबंध लगता है।"

"वह कैसे?" नूरन की माँ ने घबरा कर पूछा।

"वह गर्भवति है। छठे महीने में है।" दाई ने उत्तर दिया।

दाई की बात सुन कर नूरन की माँ स्तंभित हो गई। उसने यह बात अपने बेटों से की। तीनों ने मिलकर नूरन से पूछा। वह इसे छिपा नहीं सकती थी परन्तु वह लालचंद से प्यार करती थी। उसने कहा, " मैं बताती हूँ, मगर मैं आपसे हाथ जोड़कर निवेदन करती हूँ आप उसे कोई हानि नहीं पहुँचाएँगे।" नूरन ने जब लालचंद का नाम बताया तो फ़ैज़ा को बड़ा क्रोध आया। यदि उसने वचन ना दिया होता तो शायद वह उसी समय लालचंद की हत्या कर देता। वह चुप कर गया, परन्तु अधिक समय तक चुप नहीं रह सका।

उन दिनों हिन्दस्तान का विभाजन करके पाकिस्तान बनाने का अभियान ज़ोर पकड़ रहा था। मुसलमानों में बड़ा जोश था। उनके नेताओं ने हिन्दुओं के विरूद्ध कई मनघड़त कहानियाँ बनाकर अनेक मुसलमानों के अंदर घृणा पैदा कर दी थी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए एक शाम फ़ैज़ा और कालू लालचंद की दुकान पर गए और उसे एक ओर बुलाकर कहा, " या तो तुम नूरन से शादी कर लो या अपने सिर पर कफ़न बाँध लो।"

लालचंद प्रेम में अंधा तो हो ही चुका था और जब उसने कई दिन नूरन को नहीं देखा वह अधिक चितिंत रहने लगा। नूरन के भाईयों ने उसका मीर पुर ख़ास जाना बंद कर दिया था। लालचंद नूरन से विवाह करने के लिए मान गया मगर उसने यह बात अपनी माँ और नीना को नहीं बताई। विवाह के लिए नूरन के भाईयों ने कई कड़े प्रतिबंध लगाए, " तुम्हें अपना धर्म त्याग करके मुसलमान बनना पड़ेगा। तुम्हें नीना को पहले तलाक देना पड़ेगा। विवाह के पश्चात तुम्हारी माँ और नीना तुम्हारे साथ नहीं रहेंगे।" वह ये सब प्रतिबंध पूरा करने के लिए मान गया। जब लालचंद की माँ और नीना को यह समाचार मिला उनके होश उड़ गए। वे रोईं, चिल्लाई और अंत में लालचंद के पाँव पड़ गई, मगर वह कहाँ मानने वाला था। नीना के माता पिता और कई संबंधियों तथा जानकारों ने उसे बहुत समझाया मगर उसपर उनके समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नीना के माता पिता के लिए अब कोई उपाय नहीं था। वे नीना और उसके बच्चे को अपने साथ ले गए। वे लालचंद की माँ को भी साथ ले जाना चाहते थे मगर वह नहीं मानी। लालचंद ने अपनी माँ के लिए मीर पुर ख़ास में एक छोटा सा मकान किराए पर ले लिया और माँ को वहाँ भेज दिया। परन्तु पुत्र के धर्मपरिवर्तन का दुःख वह अधिक समय तक सहन ना कर सकी और चार मास के बाद चल बसी।

लालचंद अब पक्का मुसलमान बन चुका था। उसका नाम बदल कर लाल ख़ान हो गया था। हिन्दु धर्म के सब चिंह मिटा दिए गये। उसकी चोटी काट दी गई। जन्यु को उतार कर फेंक दिया गया। भजन कीर्तन के स्थान पर वह निमाज़ पढ़ने लगा। तस्वीह के आगे चंदन माला के मोती बिखर गए। अब वह जिन से मिलता उन्हें 'जय भवानी' या ' नमस्ते' नहीं कहता था।

वह 'सलामइलेक्म' कहने लगा। मंदिर का स्थान मसज्जिद ने ले लिया। पंडित मुल्ला हो गया। जिस गाय की वह पूजा करता था उसका मास खाने लगा। उसका भगवान चला गया। उसके स्थान पर खुदा आ गया।अब वह दाढ़ी रखने लगा। सब से आश्चर्य की बात यह थी उसका ख़त्ना किया गया अर्थात सुनत रीति के अनुसार उसके लिंग की कुछ चमड़ी काट दी गई। सुनत इस बात का पक्का प्रमाण था कि वह वास्तव में ही मुसलमान था। सुनत से ही उसके मुसलमान होने की पक्की पहचान थी। उसने नूरन से विवाह तो कर लिया मगर उसे बड़ा दुःख हुआ जब उसका पहला बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ । कुछ लोगों का मानना था यह नीना के अभिशाप का परिणाम था।

क्योंकि उसके अधिकतम ग्राहक मुसलमान थे लाल ख़ान हो जाने पर उसका धंधा पहले से बढ़ गया। मगर फ़ैजा उसके लिए एक प्रकार से राह का काँटा बन गया। वह शराब बहुत पीता था। जब उसके पास शराब पीने के लिए पैसे नहीं होते थे वह नूरन से चोरी छिपे ले जाता था। लालचंद को इस बात का पता चल गया मगर शायद वह बबेस था। उसे भय था कहीं तू तू मैं मैं में नूरन उसे छोड़ कर ना चली जाए । वह नूरन के बिना नहीं रह सकता था। वैसे भी नूरन के अतिरिक्त उसके पास और कोई नहीं था।

इतने में हिन्दुस्तान का बटवारा हो गया। सिंध प्रांत पाकिस्तान का अंग बन गया। साम्प्रदायिक झगड़े होने लगे। देखते देखते अधिकांश हिन्दु पाकिस्तान छोड़ कर भारत आ गए। दो चार परिवारों को छोड़ कर मीर पुर ख़ास के हिन्दु भी चले गए। लालचंद को कोई सूचना दिए बिना नीना अपने बच्चे को लेकर माँ बाप के साथ भारत आ गई। इस कोलाहल में लालचंद की दुकान का धंधा बिगड़ गया । वह कुछ चिंतित रहने लगा। अभि वह इस

चिंता से मुक्त नहीं हुआ था उसके ऊपर एक भयंकर विपत्ति का पर्वत टूट पड़ा। एक शाम नूरन अपनी माँ से मिलकर वापिस घर आ रही थी। अंधेरा होने के कारण उसका पाँव एक काले नाग पर पड़ा जिसने उसे डस लिया। इससे पूर्व कोई उसकी सहायता के लिए आता विष उसके शरीर में इतनी तीव्र गति से फैल गया कि उसकी वहीं मृत्यु हो गई।

नूरन का अकस्मात संसार को छोड़कर चले जाना लाल ख़ान के लिए दिल चीर देने वाली दुर्घटना थी। अब वह अकेला पड़ गया था। जो दो चार पुराने हिन्दु मित्र थे वे भी मीर पुर खास छोड़ कर भारत चले गए थे। अपना ही घर अब उसे काटने को दौड़ता था। दुकान से उसका मन उचाट हो गया। फ़ेज़ा ने उसकी चिंता और बढ़ा दी। जब तक नूरन जीवित थी वह शराब पीने के लिए उससे कुछ ना कुछ बटोर कर ले जाता था। लालख़ान तो पहले ही फ़ेज़ा से घृणा करता था मगर नूरन के कारण चुप रहता था । अब उसने फ़ेज़ा को स्पष्ट शब्दों में कहा, '' तुम्हें अब एक फूटी कोड़ी भी नहीं मिलेगी।'' फ़ेज़ा ने क्रोध में आकर चार गुंडों के साथ मिलकर लाल ख़ान की दुकान का सारा माल लूट लिया। लालख़ान ने पुलिस में रिर्पोट लिखवाई मगर कुछ प्राप्त नहीं हुआ। उसने कुछ नकदी और ज़ेवर एक मटके में डाल कर घर के अंदर ज़मीन में गाड़ रखे थे। एक रात उसने ज़मीन खोद कर मटके को बाहर निकाला ।कुछ कपड़ों के साथ नकदी और ज़ेवर एक गटड़ी में बांध कर सोनगढ़ इस आस से आ गया कि उसे नीना मिल जाएगी ।परन्तु उसे निराशा का सामना करना पड़ा क्योंकि वह तो कब की वहाँ से जा चुकी थी। फ़ेज़ा के डर से लाल ख़ान वापिस मीर पुर ख़ास नहीं गया। सोनगढ़ में एक कमरा किराये पर लेकर वहीं रहने लग गया। वह नीना और अपने बच्चे से अब मिलने का

बहुत इच्छुक था । मगर किसी को क्या बताए वह हिन्दु था या मुसलमान।

सोनगढ़ में उसकी मुठभेड़ गामा नाम के एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो आदमियों को छिपा कर भारत पाकिस्तान की सीमा से आर पार करता था। वह एक प्रकार से तस्कर था जो वस्तुओं के स्थान पर उचित दाम लेकर लोगों को इधर उधर करता था। उसने स्पष्ट शब्दों में लाल ख़ान को कहा, " यदि तुम मुझे दस हज़ार रूपये दो तो मैं तुम्हें सीमा पार पहुँचा दूँगा। तुम भारत पहुँच जाओगे परन्तु आगे क्या होगा यह तुम्हारी चतुराई पर निर्भर है या फिर तुम्हारा भाग्य।" लाल ख़ान मान गया। उसे गामा ने परामर्श दिया, " यदि तुम हिन्दु बन कर जाओ तो तुम्हारा भारत में रहना शायद इतना आपत्तिजनक ना हो। तुम कह सकते हो कि पाकिस्तान सरकार के अल्पसंख्या दलों पर बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण तुम वहाँ से भाग कर आए हो। कोई मनघड़त कहानी बना लो। तुम तो वैसे भी हिन्दु थे। अपने आप को हिन्दु सिद्ध करने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए क्योंकि तुम हिन्दु धर्म की रीति रिवाजों से भले भांति परिचित हो।" लालचंद ने ऐसा ही किया। फिर से चोटी रख ली, दाढ़ी साफ़ करवा दी और गले में कमीज़ के नीचे छिपा कर जन्यु डाल लिया। गामा ने उसे मरूस्थल द्वारा सीमा पार करा के राजस्थान की सीमा पर किशनगढ़ के निकट छोड़ दिया ।वह वहाँ से चोरी छिपे धनकोट से होता हुआ जैसलमेर पहुँच गया जो उसके लिए नव्य स्थान नहीं था। वह अपने पिता के साथ वहाँ रामचंदानी नाम के एक संबंधी को मिलने के लिए तीन बार आ चुका था और उसके निवास स्थान को पहचॉनता था। रामचंदानी ने भी उसे पहचान लिया। लालचंद ने कहा, "मीर पुर ख़ास में मुसलमानों ने मेरी दुकान लूट

ली और मैं किसी तरह बचबचा कर वहाँ से निकल आया हूँ। उस समय मेरी पत्नी और मेरा बच्चा सोहनगढ़ में थे। सोहनगढ़ जा कर मुझे यह जानकारी मिली कि वे भारत चले गए हैं।'' रामचंदानी ने उस पर दया करते हुए उसे अपने घर में रख लिया और उसे तसल्ली दी कि वह पुलिस को नहीं बताएगा। थोड़े दिनों के पश्चात जब उसे विश्वास हो गया कि वह नहीं पकड़ा जाएगा, उसने रामचंदानी को कहा, ''मेरे पास कुछ अलंकार हैं जिन्हें बेच कर मैं एक छोटी सी दुकान खोलना चाहता हूँ।'' उसकी दुकान चल पड़ी। मगर उसने नीना और अपने बच्चे की खोज नहीं छोड़ी। इसके अतिरिक्त उसको एक और चिंता खाए जा रही थी। यदि किसी ने उसके लिंग को किसी कारण से देख लिया तो वह तुरंत पकड़ा जाएगा और उसपर जासूसी का दोष लगाकर उसे सदा के लिए जेल में डाल दिया जाएगा। सावधानी बरतते हुए भी जिस स्थिति से वह घबराता था वही उसके संमुख आई।

मोना नाम की नौकरानी जो लालचंद के घर का काम करती थी वह नाम से हिन्दु लगती थी मगर थी वह मुसलमान। एक दिन दुकान बंद होने के कारण लालचंद धोती पहन कर खाट पर लेटा हुआ था उसको नींद आ गई। उस समय मोना घर में काम कर रही थी। उसकी द्योती करवट बदलते समय खिसक गई जिसका लालचंद को नींद में पता नहीं चला। अकस्मात मोना की दृष्टि लालचंद के लिंग पर पड़ी। उसकी सुनत देखकर वह चकित रह गई। पहले तो उसे विश्वास नहीं आया। फिर लालचंद के निकट जाकर उसने बड़े ध्यान से देखा तो वह भयभीत हो गई। काम कर के जब वह अपने घर गई उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह सुनत की बात अपने पति को बताए या नहीं। वह डरती थी कहीं उसका पति उसके कहने का अनुचित अर्थ ना निकाल ले। मगर

वह कुछ कहना भी चाहती थी क्योंकि उसने सुन रखा था कि कई पाकिस्तानी जासूस हिन्दुओं के वस्त्र पहन कर भारत में घुस आए थे। थोड़ा सोच विचार करने के पश्चात उसने अपने स्वामी को कहा, " मुझे लगता है लालचंद हिन्दु के वेश में पाकिस्तानी मुसलमान है।"

"क्या कह रही है तू? किस आधार पर कह रही है तू।" उसके स्वामी ने आश्चर्य से पूछा।

"आज जब मैं उसके घर गई, संयोग से घर का दरवाज़ा खुला था। मैंने उसे घर के एक कोने में निमाज़ पढ़ते हुए देखा। मेरे पाँव की चाप सुनकर उसी समय वह खड़ा हो गया और मेरी ओर क्रोध से देखने लगा। शायद वह कुछ कहना चाहता था मगर बिना कुछ कहे दूसरे कमरे में चला गया।"

"मगर यह कैसे हो सकता है। रामचंदानी साहब तो उसके परिवार को जानते हैं। उसे भी जानते हैं। अगर जो तू कह रही है सत्य है तो समस्या बड़ी गंभीर है। शायद , जैसे कि तू कह रही है, वह पाकिस्तानी जासूस है।"

वह तुरंत रामचंदानी के घर गया और जो बात मोना ने उसे सुनाई थी वह उसने रामचंदानी को भी बताई। पहले तो रामचंदानी को विश्वास नहीं आया परन्तु फिर सोचने लगा कुछ भी संभव है। पुलिस को सूचित करने से पूर्व वह स्वयं सिद्ध करना चाहता था कि लाल चंद मुसलामन है। इसका एक ही उपाए था कि उसका लिंग देखा जाए। मगर कैसे? कुछ विचार करने के पश्चात वह चार व्यक्तियों को लेकर लालचंद के घर गया और घर के अंदर घुसते ही हठात् से उसकी धोती उतार दी। आगे क्या होना था। पुलिस ने उसे पकड़ कर जेल में बंद कर दिया और जाँच पड़ताल आंरभ कर दी। उस पर पाकिस्तानी जासूस होने का दोष लगाया

गया। जब पुलिस ने उसे मारापीटा तो उसने सारी कहानी सुनाई मगर उसके अपराध स्वीकरण से प्रसंग का अंत नहीं हो सकता था। वह सच कह रहा था या झूठ इसकी जड़ तक पहुँचना आवश्यक था विशेषकर जब वह पाकिस्तान से चोरी छिपे सीमा पार करके आया था। यह केस आगे की कार्यवाही के लिए केन्द्रिय जाँच ब्यूरो को सौंपा गया। ब्यूरो ने इसकी सूचना विदेश मंत्रालय को दी और मंत्रालय ने कराची में अपने दूतावास को आत्यावश्क पत्र लिखकर लालंचद के पिछले जीवन की पुष्टि करने के लिए कहा। दूतावास को ठीक जानकारी प्राप्त करने में काफ़ी समय लग गया परन्तु अंत मे जब दूतावास का उत्तर आया तो उसने लालचंद के व्यक्तव्य की पुष्टि कर दी । वह जासूसी अपराध से मुक्त हो गया परन्तु बिना यात्रा लेख पत्र अर्थात बिना पासपोर्ट और विज़ा के सीमा पार करने के अपराध में उसे एक वर्ष का दंड मिला और दंड समाप्त होने के पश्चात उसे वापिस पाकिस्तान भेजने का आदेश हुआ क्योंकि वह अब पाकिस्तानी मुसलमान था।

जब वह जेल में था उसने गृह मंत्रालय को भारत में सदा रहने के लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा जो स्वीकार नहीं हुआ। एक वर्ष पूरा होने से पूर्व विदेश मंत्रालय ने दिल्ली में पाकिस्तान दूतावास को लिखा कि लाल ख़ान की रिहाई के पश्चात उसे पाकिस्तान भेजने का प्रबंध किया जाए परन्तु दूतावास ने उसे वापिस लेने से इंकार कर दिया । एक वर्ष का दंड पूरा करने के पश्चात भारतीय पुलिस ने उसे सीमा पार पाकिस्तान में धकेल दिया। वह पकड़ा गया और पाकिस्तान न्यायालय ने उसे उसी अपराध के लिए एक वर्ष का दंड दिया जिस के लिए भारतीय न्यायधीश ने उसे दिया था अर्थात उसने चोरी छिपे सीमा पार करके नियमों का उल्लंघन किया था।

एक वर्ष जेल में रहने के पश्चात जब उसकी छुट्टी हुई उसके पास रहने के लिए कोई ठिकाना नहीं था तो पेट कहाँ से भरता। उसने नौकरी के लिए बहुत प्रयास किए मगर उसे सफलता नहीं मिली। विवश हो कर अंत में वह लाहौर की शाही मसज्जिद के बाहर भिखारियों की पंक्ति में खड़ा हो गया और वही उसकी जीविका का साधन बन गया। कभी कभी जब उसे नीना और अपने बच्चे की याद आती तो वह तड़प उठता और जब उसे नूरन की याद आती तो वह चिल्लाने लगता। इस तड़प और चिल्लाने ने उसे अर्ध पागल बना दिया। वह लाहौर की सड़कों और गलियों में सारा दिन एक पागल की भाँती घूमता रहता और जहाँ से जो कुछ मिलता खा लेता और रात को जहाँ स्थान मिलता सो जाता।

* * * * * * * * *

1929 में मुज़फ़्फ़रगढ़ (अब पाकिस्तान में), चनाब नदी के पश्चिमी तट से 6 मील दूर, एक छोटे से नगर मे जन्म हुआ। हाई स्कूल पास करने के पश्चात 1947 में भारत प्रवास किया।

B.A.M.A. (अंग्रेजी) पंजाब विश्वविद्यालय से और LL.B. दिल्ली विश्वविद्यालय से किये।

1956 से 1981 तक विदेश मंत्रालय में काम करने के पश्चात अपनी इच्छा से पद छोड़ दिया। विदेश कार्यस्थानों में पाकिस्तान, इंडोनेशियां, जापान और अमेरिका सम्मिल्लित हैं।
वे अंग्रेजी और उर्दू में भी लिखते हैं।

उनके पूर्व संकलन हैं :
अंग्रेजी में काव्य संग्रह - Ravana and Other Poems तथा कहानी संग्रह - He Came From Nowhere And Other Stories
उर्दू में काव्य संग्रह - हबाब-ए-सुख़न (काव्य जलबिंब) हिन्दी प्रतिलिपि के साथ।
हिन्दी में काव्य संग्रह - काव्य तरंगिणी।

ISBN - 81 - 8290 - 005 - 0

Price Rs. 95/- US $ 8.00

Published by
SHUBHI PUBLICATIONS
15, A.K.D. Towers, Sector–14
Gurgoan–122.001 (Haryana) India